पशुबलि

हिन्दू धर्म एवं विश्व मानवता पर एक कलंक

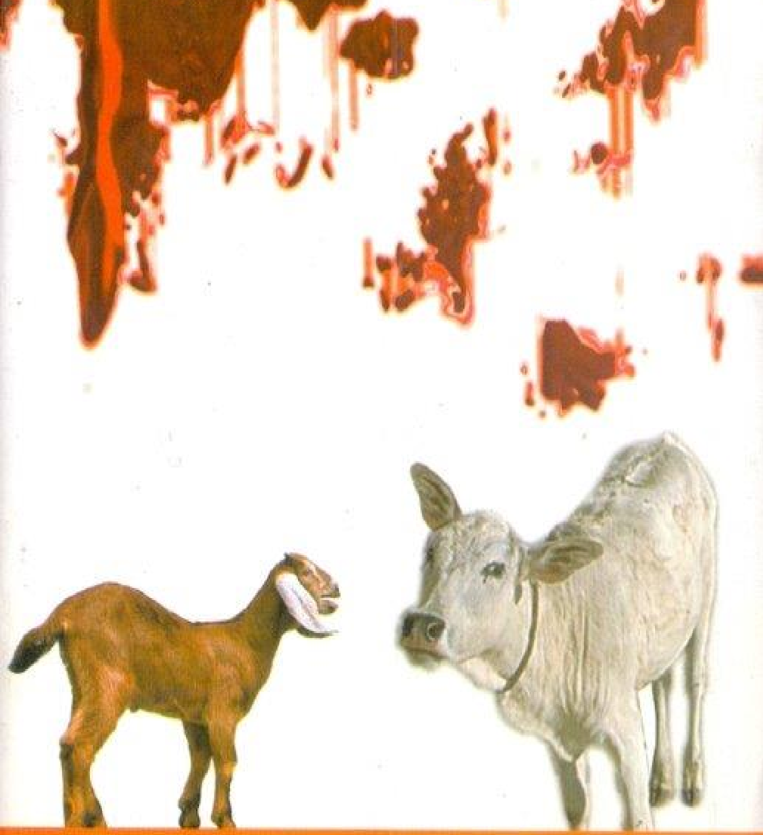

पशुबलि-

हिंदू धर्म एवं मानव-सभ्यता पर एक कलंक

लेखक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११ मूल्य : १२.०० रुपये

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

ISBN
81-89309-14-5

पत्र व्यवहार का पता-

गायत्री तीर्थ शांतिकुंज-हरिद्वार

पिन- २४९४११

फोन- (०१३३४)२६०६०२, फैक्स- २६०८६६

प्राक्कथन

आज हम इक्कीसवीं सदी के विज्ञान प्रधान युग में जी रहे हैं। तर्क, तथ्य, प्रमाण की कसौटी पर ही कसकर आज का जनसामान्य किसी तथ्य को गले उतार पाता है। विज्ञान ने एक नई दृष्टि दी है एवं उसी का परिणाम है कि भौतिकक्षेत्र में सुविधाएँ देने वाली ढेर सारी उपलब्धियाँ हस्तगत होती चली गयीं। विज्ञान और धर्म परस्पर पूरक हैं। यदि दोनों का सही अनुपात बना रहेगा तो निश्चित ही अध्यात्म सम्मत विज्ञान एवं विज्ञान सम्मत धर्म लोक हितकारी बनेगा। हमारी संस्कृति चिरपुरातन है एवं विज्ञान ने आज जो दृष्टि दी है, वह हमारे ऋषि मुनियों ने हमें वैदिक काल में ही देकर जीवन को सर्वांगपूर्ण बना दिया था।

दुर्भाग्य की बात है कि आदिम मानव-नरपशुओं के समय जैसी कुप्रथाएँ जो किसी षड्यंत्रवश वेदों के शब्दों का गलत अर्थ लगाकर मध्यकाल में पनपायी गयीं, आज भी दिखाई देती हैं। पशुबलि उनमें से एक है। "अहिंसा परमोधर्मः" का विवेचन कर धर्म को नया आयाम देने वाले गौतम बुद्ध के धरती पर आविर्भाव के २५०० वर्ष बाद भी यह प्रथा जनजातीय वर्ग में-सामान्य जनों में जीवित है। कौन सा धर्म सिखाता है कि देवी बलि से प्रसन्न होती है ? यदि ऐसा होता है तो वह देवी है ही नहीं। उत्तरांचल के पहाड़ी जनपदों, बिहार, झारखंड, छत्तीसगढ़, असम, उड़ीसा, तमिलनाडु आदि प्रांतों में अभी भी यह कुप्रथा प्रचलन में है। एक विरोधाभास सा दिखता है कि एक ओर सर्वाधिक प्रशिक्षित विश्व को तकनीकी विशेषज्ञ-वैज्ञानिक देने वाला भारत और दूसरी ओर इस तरह के

अंधविश्वास, जिनमें पुरुषार्थ को नकार कर अपनी ताकत का प्रदर्शन करके निरीह पशुओं की बलि दी जाती है और उससे मनोकामनाओं की पूर्ति की आशा की जाती है।

अर्थ का अनर्थ होने, पशु व बलि शब्द के गलत अर्थ लेने एवं अपने स्वार्थ के लिए प्रयुक्त करने के कारण ही ऐसा हुआ है। यदि हम हिंदू धर्म पर लगे इस कलंक को इतिहास में ढूँढ़ें तो वेद-पुराण-महाभारत कहीं भी इनका वर्णन नहीं मिलता। "मेध" शब्द का गलत अर्थ जानबूझकर प्रचलित किया गया। जीवदया, करुणा का सिद्धांत मूक जीवधारियों को मारना नहीं सिखाता। सभी धर्मशास्त्रों के मूल मर्म में करुणा का भाव छिपा है। पशुबलि के नाम पर जिह्वालोलुपों ने मांसाहार हेतु अपना स्वार्थ साधा और देवी या देवता के नाराज होने की बात कही। यह बिल्कुल गलत है। प्रस्तुत पुस्तक पशुबलि की चल रही कुप्रथा के विरुद्ध शांतिकुंज के सप्तसूत्री आंदोलन के अंतर्गत जाँजगीर-चाँपा (छत्तीसगढ़) जैसे क्षेत्रों में चल रहे सत्याग्रह आंदोलन को बल देने के लिए परम पूज्य गुरुदेव के लेखों का संकलन कर तैयार की गयी है। छोटे-बड़े पर्वों पर देवी-देवता के नाम पर पिछले दिनों जो बलि दी जाती रही है उसमें यद्यपि बड़ी कमी आयी है, फिर भी जनमानस का निर्माण अनिवार्य है। गुरुसत्ता के चरणों में नमन के साथ यह उन्हीं को समर्पित है।

- डॉ० प्रणव पण्ड्या

विषयसूची

क्रमांक		पृष्ठ संख्या
१.	पशुबलि हिंदूधर्म पर कलंक है	६
२.	अर्थ का अनर्थ हो गया	११
३.	पशु शब्द के विभिन्न अर्थ	१५
४.	पशुबलि से नरक मिलता है	२०
५.	पशुबलि का निषेध	२४
६.	महाभारत में हिंसा का विरोध	२६
७.	पुराणों की पशुबलि विरोधी घोषणाएँ	३०
८.	स्मृतियों में अहिंसा का प्रतिपादन	३४
९.	यज्ञों में पशुबलि का निषेध	३८
१०.	यज्ञबलि का सार्थक भाव-देव दक्षिणा	४६
११.	यह अंध-विश्वासी प्रथा बंद होनी ही चाहिए	४९
१२.	आत्मा की अमरता का सिद्धांत	५२
१३.	धर्म शास्त्रों का आदेश	५४
१४.	देवी देवताओं को बदनाम करने वाले	५६
१५.	अन्य मतावलंबियों द्वारा जीव हिंसा का निषेध	५८

पशुबलि हिंदू धर्म पर कलंक है

हिंदू धर्म का मूलभूत तत्त्वज्ञान इतना महान है कि उसके प्रत्येक सिद्धांत एवं विधान में विश्व कल्याण की, मानवता के चरम उत्थान की संभावनाएँ ही सन्निहित हैं। देवताओं और ऋषियों ने इस महान धर्म का ढाँचा इतने उच्च कोटि के आदर्शों द्वारा विनिर्मित किया है कि उसके व्यवहार का परिणाम स्वर्गीय वातावरण का निर्माण ही हो सकता है। परंतु दुःख की बात है कि पिछले अज्ञानांधकार युग में उसमें जहाँ-तहाँ अनैतिक और अहितकर मान्यताओं और रूढ़ियों का भी समावेश होने लगा और आज जो रूप हिंदू धर्म का हमारे सामने है, उसमें कई चीजें बहुत खटकने वाली ही नहीं, उन भावनाओं के सर्वथा प्रतिकूल भी हैं, जिनको लेकर ऋषियों ने इस महान धर्म की रचना की थी।

ऐसी विकृतियों में पशुबलि को सर्वोपरि कलंकी प्रथा कहा जा सकता है। मूक पशु-पक्षियों का देवी-देवताओं के नाम पर कत्ल किया जाना उन देवताओं की महिमा को समाप्त करके सारे सभ्य समाज के सामने उन्हें घृणित, निंदित, नीच, क्रूर एवं हत्यारा सिद्ध करना है। जिस देवता को प्रसन्न करने के लिये बलि चढ़ाई जाती है, वस्तुतः उन्हें असीम कष्ट और असीम लज्जा इस कुकृत्य से होती है। क्योंकि "देवता" शब्द ही दिव्य-तत्त्व, दया, करुणा, दान, उदारता, सेवा, सहायता आदि सत्प्रवृत्तियों का द्योतक

है। जिसमें यह गुण न हों- उलटे नन्हें-मुन्ने, बेबस और बेकस प्राणियों का खून पीने की इच्छा हो, उन्हें देवता कौन कहेगा? वे तो असुर एवं पिशाच ही गिने जायेंगे। देवताओं के महान गौरव को नष्ट कर उन्हें दुनिया के सभ्य समाज के सम्मुख इस बुरे रूप में उपस्थित करना वस्तुतः उनके साथ दुश्मनी करना है। उन्हें कलंकित करने का प्रयत्न करने वाले के प्रति वे प्रसन्न होंगे, इसकी आशा कदापि नहीं की जा सकती। परिणाम स्वरूप जो लोग पशुबलि करते हैं, उनमें उलटे रोग, शोक, अज्ञान आदि क्लेश-कलह, दुष्टता, दुर्बुद्धि आदि अनेक दुखों की ही वृद्धि होती है। पशुबलि करने वाले लोगों में से फलते-फूलते कोई विरले ही देखे जाते हैं, अन्यथा उन्हें निर्दोष जीवों की हत्या तथा देवता को कलंकित करके उनके क्रोध एवं शाप के फलस्वरूप नाना प्रकार के कष्ट ही मिलते हैं।

पशुबलि प्रथा से देवताओं का भारी अपयश होता है, हत्या का नृशंस पाप लगता है और बलि करने-कराने वालों को पाप का निश्चित परिणाम भुगतने के लिये इस लोक में नाना प्रकार के दुःखों एवं परलोक में नारकीय यंत्रणाओं का भागी बनना पड़ता है। यह कुप्रथा निश्चित रूप से हिंदू धर्म पर एक भारी कलंक है। जिस धर्म का मूल ही दया और अहिंसा हो, उसमें इस प्रकार के कुकृत्यों को किसी भी प्रकार धर्मानुकूल नहीं कहा जा सकता।

धर्म के नाम पर अधार्मिक कृत्यों का प्रचलन प्रत्येक धर्म प्रेमी को एक मार्मिक पीड़ा पहुँचाने वाली बात है, कोई खाने की दृष्टि से मांस खावे तो उसकी व्यक्तिगत स्वार्थपरता ही मानी जायगी, इससे सारा समाज या सारा धर्म कलंकित नहीं होता, पर पशुबलि सरीखे कृत्यों से तो हमारे अहिंसा, सत्य, प्रेम और दयामूलक धर्म की मूल मान्यताओं पर ही कुठाराघात होता है, इसे देखकर सच्चे धर्मप्रेमी यदि चिंतित, खिन्न और विह्वल होते हों तो यह सर्वथा उचित ही है।

अनेकों देव मंदिरों में पशुबलि होते देखकर किसी भी ऐसे विचारशील व्यक्ति के मन पर भारी आघात लगता है, जिसने हिंदूधर्म के महान स्वरूप को समझने का प्रयत्न किया है। हिंदूधर्म दया, प्रेम, भ्रातृत्व, मानवता और प्राणिमात्र के प्रति स्नेह-सद्व्यवहार सिखाने वाला धर्म है। इसके सभी देवता दयालु, सहृदय, उदार, करुणा और सहायता करने वाले हैं। फिर वे पशु-पक्षियों का खून पीकर प्रसन्न हों, यह कैसे संभव है? धर्मशास्त्रों को जितना ही गंभीर दृष्टि से देखा जाय, उतना ही यह निश्चय होता जाता है कि हमारा धार्मिक तत्त्वज्ञान और आदर्श भी इस बात से सहमत नहीं हो सकता है कि कोई देवता पशु-पक्षियों का मांस खाने या खून पीने की आकांक्षा करता है या इस कार्य में उसे कुछ प्रसन्नता हो सकती है।

बहुधा देवी काली के मंदिरों में, भैरव आदि के मठों में एवं ग्राम देवताओं के चबूतरों पर बकरे, भैंसों, मुर्गे, कबूतरों की बलि चढ़ाई जाती है। काली के तो अनेकों मंदिर अभी भी ऐसे हैं, जहाँ हर साल सहस्रों पशु-पक्षियों का गला काट डाला जाता है। बंगाल, मध्य प्रदेश के पिछड़े क्षेत्रों, दक्षिण भारत, राजस्थान और हिमालय के पहाड़ी प्रदेश इस कार्य में अग्रणी हैं। यों तो आये दिन यह हत्या कर्म होते ही रहते हैं, पर नवरात्रि के दिनों में तो यह नृशंसता अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। कई बड़े-बड़े मंदिरों में उन दिनों जो बूचड़खाने जैसा घृणित दृश्य उपस्थित होता है, उसे देखकर किसी भी सहृदय और धार्मिक भावना वाले व्यक्ति की अंतरात्मा काँप उठती है। उस दृश्य को देख कर कोई भी विचारवान व्यक्ति यह स्वीकार नहीं कर सकता कि यहाँ देव मंदिर है और यहाँ कोई धर्म कार्य किया जा रहा है।

हमारे धर्म ग्रंथों में इस कुकर्म का कहीं समर्थन नहीं है। कहीं-कहीं आलंकारिक रूप में ऐसा वर्णन अवश्य मिलता है कि

अपने आंतरिक दोष-दुर्गुणों को पशु मानकर उनका परित्याग, बलिदान देव सान्निध्य में किया जाय। लगता है कि स्वार्थी लोगों ने उस साहित्यिक पहेली की आलंकारिक भाषा को तोड़-मरोड़ कर अपनी जिह्वा लोलुपता की पूर्ति का साधन बनाया है। मांसाहार, मद्यपान और व्यभिचार, यह तीन पाप हमारे यहाँ बहुत बड़े माने गये हैं। लोग अपनी आसुरी वृत्तियों से प्रेरित होकर इन्हें करते हैं, पर इसके लिये समाज में उनकी निंदा होती है और अंतरात्मा भी धिक्कारती है। इन दोनों ही विरोधों से बचने के लिए मांसाहार को पशुबलि के बहाने उचित ठहराने का किन्हीं ने निंदनीय प्रयास किया होगा। खेद है कि उन्हें सफलता भी मिली और पिछले दिनों यह पाप प्रचंड रूप से पल्लवित हुआ। इस विचारशीलता के युग में वह घटता तो जा रहा है, पर मिटता अब भी नहीं है।

साधारणत: भोले-भाले अज्ञानग्रस्त लोग ऐसा सोचते हैं कि काली माई हमारे द्वारा पशु-पक्षियों का मांस खिलाने से प्रसन्न होगी और हमारी मनोकामनाएँ पूरी करेगी। बाल-बच्चे पैदा नहीं होते होंगे, तो बच्चे पैदा कर देगी, मुकदमा जिता देगी, धन देगी, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करावेगी, हमारे हर कार्यों में सफलता देगी। वे एक रिश्वत के रूप में देवी को मद्य, मांस खिला-पिला कर प्रसन्न करना चाहते हैं और उससे मनमाने वरदान प्राप्त करना चाहते हैं। यह मान्यता सर्वथा असंभव एवं भ्रमपूर्ण है। वास्तव में बात बिलकुल उलटी है। देवता हमेशा सत्कर्म से प्रसन्न होते हैं और कुकर्मों से अप्रसन्न। जो कुकर्म से, हत्या जैसे महान पाप से प्रसन्न हो, वह देवता ही नहीं माने जा सकते। देवता लोग कुकर्म करने वाले से रुष्ट रहते हैं और उसे कोई वरदान देना, लाभ पहुँचाना तो दूर, उलटे हानि एवं दंड की व्यवस्था करते हैं।

देवी भगवान की दिव्य शक्ति का नाम है। यों दीनदयाल, दया-निधान, करुणासिंधु भगवान अपने पुत्रों को, संसार के सभी

प्राणियों को अपार स्नेह करते हैं, पर माता भगवती की करुणा एवं वात्सल्यता का तो कहना ही क्या है? माता का हृदय पिता की अपेक्षा अनेक गुना अधिक करुणापूर्ण होता है। जब मनुष्य योनि की साधारण स्त्रियाँ अपने बच्चे को प्राण के समान प्यार करती हैं, उन्हें तनिक-सा कष्ट होने पर व्याकुल हो जाती हैं, तो फिर उस दिव्य माता का- देवी काली की करुणा का तो ठिकाना ही क्या है, जिसके अंतःकरण से निरंतर स्नेह और वात्सल्य की धारा बहती रहती है। वे मनुष्यों की ही नहीं, पशु-पक्षियों की भी माता हैं।

उसी जगदंबा माता भवानी के पवित्र नाम पर जब पशु-बलि होती है तो देवत्व की आत्मा काँपने लगती है। बेचारे निरीह बकरे-भैंसे माता के आगे निर्दयता पूर्वक कत्ल किये जाते हैं और उनका रक्त -मांस माता को खाने के लिये उपस्थित किया जाता है, यह कितना नृशंस कार्य है। इससे स्वर्गलोक निवासिनी देवी की तो क्या, इस मृत्युलोक की साधारण नारी की भी अंतरात्मा चीत्कार करने लगेगी। यदि कोई दुष्ट मनुष्य किसी माता की गोदी से उसका बच्चा छीनकर उसकी आँखों के आगे ही कत्ल करे और फिर उसके कलेजे के टुकड़े, उस बच्चे का खून-मांस उस माता के मुँह में ठूसे तो उसे कितनी मार्मिक व्यथा होगी, इसकी कल्पना कोई बाल-बच्चेदार सहृदय व्यक्ति ही कर सकते हैं। जिस दुष्ट व्यक्ति ने यह नृशंस कर्म किया है, क्या उससे वह माता कभी प्रसन्न होगी? क्या उसे कोई उपहार या वरदान देगी? निश्चय ही ऐसा नहीं हो सकता। वह उस कुकर्मी को शाप और दंड देने की बात ही सोच सकती है।

अर्थ का अनर्थ हो गया

देव प्रतिमाओं के सामने पशुबलि करने का विचार उसी तांत्रिक भ्रष्ट परंपरा का आधुनिक संस्करण है, जो वेद का वास्तविक अर्थ न जानने के कारण मध्यकालीन अंधकार युग में फैली थी। उसी को हटाने के लिये भगवान बुद्ध को अवतार लेना पड़ा था। वेदों में सर्वत्र अहिंसा का प्रतिपादन है। देव-पूजा में उत्कृष्ट भावनाओं तथा सात्त्विक उपकरणों के प्रयोग का निर्देश है। ऐसी ही पूजा आध्यात्मिक उद्देश्यों को उपलब्ध करा सकती है, देवता भी उसी से प्रसन्न होते हैं।

आलंकारिक रूप में धर्म शास्त्रों में कहीं-कहीं पशुबलि शब्द का प्रयोग हुआ है। उसका प्रयोजन अपनी पशुता-पाशविक दुर्गुणों को नष्ट करना है। बलि का एक अर्थ भेंट है, दूसरा त्याग। ईश्वर को अपने सत्कार्यों की श्रद्धांजलि अर्पित करना, सत्प्रयोजनों के लिए, परमार्थ के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का परित्याग कर देना बलिदान का मूल अभिप्राय है। दूसरा अभिप्राय यह है कि जो बुरी आदतें हमारे स्वभाव का अंग बन गई हैं, जिन दुर्भावनाओं ने मन:क्षेत्र में अड्डा जमा लिया है, उन्हें साहसपूर्वक उखाड़-पछाड़ कर नष्ट कर दिया जाय।

मानवीय अंत:करण में दो तत्त्व काम करते हैं। एक देवत्व, दूसरा असुरता। असुरता को ही पशुता भी कहते हैं। इन दोनों में निरंतर संघर्ष होता रहता है। पुराणों में देवासुर संग्राम का चित्रण इस भावनात्मक अंतर्द्वंद्व का ही किया गया है। इन दोनों में से एक बढ़ेगा तो दूसरा दुर्बल होगा। पशुत्व बढ़ेगा तो देवत्व क्षीण होगा,

देवत्व बढ़ेगा तो पशुता क्षीण होगी। इसलिए कहा गया है कि देवत्व का अभिवर्द्धन करने के लिए उनके पक्ष में पशुत्व का बध किया जाय। यह कथन आलंकारिक है। देवत्व या पशुत्व कोई मूर्तिमान प्राणी नहीं है, जिनमें से एक के सामने दूसरे को मारा-काटा जाय। यह तो अदृश्य प्रवृत्तियाँ मात्र हैं। इनमें से किसी का विकास या विनाश भावना स्तर पर ही हो सकता है। छुरी-तलवार का प्रयोग इस संदर्भ में हो ही नहीं सकता। लोगों ने इस सीधे-से निर्देश में प्रयुक्त हुए अलंकार की वास्तविकता को न समझ कर अर्थ का अनर्थ कर डाला और बेचारे निरीह जानवरों की जान के ग्राहक बन गए। धर्म के नाम पर अधर्म को विराजमान कर दिया।

प्राचीन ग्रंथों में आलंकारिक रूप से आध्यात्मिक भूमिका में दुर्गुणों को छोड़ने एवं स्वार्थों को छोड़कर परमार्थ के लिए त्याग एवं साहस दिखाने के अर्थ में पशुबलि का प्रयोग हुआ है। मध्य-कालीन अंधकार युग में यज्ञों में पशुबलि की प्रथा चल पड़ी। अर्थ का अनर्थ करने वालों ने यज्ञ में गौ,घोड़े, बकरे, मनुष्य होमने शुरू कर दिये। गौमेध यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, अजमेध यज्ञ, नरमेध यज्ञ के जो वास्तविक अभिप्राय थे, उन्हें भुलाकर पवित्र यज्ञ कार्यों को नृशंस हत्याकांडों से परिपूर्ण कर दिया। यह प्रचलन जिन दिनों चल रहा था, उन दिनों भी विचारशील लोगों ने इसका समुचित विरोध किया था। प्राचीन पुस्तकों में इस विरोध का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। पर उन दिनों शासकों और पुरोहितों की ऐसी सम्मिलित दुरभिसंधि चल पड़ी कि आँधी-तूफान की तरह यह बढ़ती हुई दुष्प्रवृत्ति रुक न सकी। बहुत दिनों तक यज्ञों को कलंकित करने वाले यह हत्याकांड होते रहे। अंत में इसी दुष्टता की प्रबल प्रतिक्रिया के रूप में जैन धर्म के संस्थापक महावीर स्वामी और बुद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध का अवतरण हुआ। उन्होंने अथक परिश्रम करके इस

कुप्रथा को हटाया और भारतीय धर्म की आत्मा में अहिंसा की पुनः प्रतिष्ठापना की।

यज्ञों में होने वाली पशुबलि ने न केवल पशुबलि के ही विरुद्ध, वरन् यज्ञों के विरुद्ध भी जनमत बना दिया। फलस्वरूप पिछले दिनों काफी लंबी अवधि तक यज्ञ-प्रणाली एक प्रकार से उपेक्षित ही हो गई। यदा-कदा ही उनके आयोजन कहीं देखे-सुने जाते थे। फिर भी वह दुष्ट परंपरा किसी रूप में लोगों के मन में घर किये रही और उनने यज्ञ के स्थान पर देव प्रतिमाओं के सामने निरीह पशु-पक्षियों की हत्या करना आरंभ कर दिया। दुर्गा एवं भैरव को तो विशेष रूप से रक्त पिपासु घोषित कर दिया और कहा गया कि वे मद्य-मांस खा-पीकर ही संतुष्ट होते हैं। अंध-विश्वासियों के मन पर कोई भी औंधी-सीधी बात चतुर लोग आसानी से बिठा सकते हैं। जिन्हें मद्य-मांस का चस्का था, उनके लिए तो यह प्रचलन एक वरदान दीखने लगा। मद्य-मांस का सेवन व्यवहारतः अधर्म माना जाता है, इसलिये उनका सेवन करने वालों की निंदा एवं भर्त्सना होती थी। पर जब देवता के नाम पर इन अभक्ष्य पदार्थों की खाने की बात सामने आई, तो उनकी मनोकामना पूर्ण हो गई। एक प्रकार से खुलेआम अवांछनीय मार्ग पर चलने की छूट मिल गई। छूट ही नहीं मिली, वरन् वह अधर्म, धर्म के रूप में मान्य एवं उचित ठहराया जाने लगा।

आज वही अनीतिपूर्ण बलि प्रथा जहाँ-तहाँ प्रचलित है। कुछ दिन पूर्व यह अंधेर जितने उग्र रूप में होता था उतना अब नहीं होता, क्योंकि प्रत्येक विचारशील व्यक्ति इसके विरुद्ध है। मानवीय अंतरात्मा कभी भी ऐसे दुष्ट कर्मों को धर्म का अंग नहीं मान सकती, इसलिए जहाँ कहीं भी यह अंधेर होता था, वह विवेक के प्रतिरोध ने बहुत अंशों में अपने आप बंद कर दिया है। फिर भी जहाँ-तहाँ उस कुप्रथा का प्रचलन है। कितने ही देव मंदिर अभी

भी इससे कलंकित हैं। नवरात्रियों में तथा अन्य अवसरों पर भी लोग अपनी उचित-अनुचित मनोकामनाएँ पूरी कराने की रिश्वत के रूप में बेचारे निरीह पशुओं का प्राण इन तथाकथित देवताओं के आगे हरण करते हैं। यह कृत्य होता तो धर्म के नाम पर है, पर वस्तुतः धर्म की आत्मा इस नृशंसता को देखकर हाहाकार कर रही होती है।

जिन्हें यह भ्रम है कि पशुबलि धर्म का अंग है, उनके लिए अगले पृष्ठों पर कुछ तथ्य प्रस्तुत करते हैं। उन्हें वे ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे, तो सहज ही यह अनुभव करेंगे कि यह प्रथा अधर्मपूर्ण एवं तुरंत ही त्याग देने योग्य है। कोई व्यक्तिगत रूप में मद्य-मांस सेवन करे यह दूसरी बात है, पर धर्म के नाम पर उसका औचित्य तो नहीं ही ठहराया जाना चाहिए। आगे कुछ शास्त्रीय प्रमाण देखिए।

'पशु' शब्द के विभिन्न अर्थ

यज्ञों की अनेक कोटियों में एक कोटि 'पशुयज्ञ' की भी आती है। एक शब्द के कई अर्थ होते हैं। पशु शब्द के भी अनेक अर्थ हैं, पर कुछ संकुचित विचार के व्यक्ति वेद और यज्ञ की मूलभूत भावना के विपरीत उसका अर्थ पशु हिंसा करने लगे। अर्थ का अनर्थ हुआ। मध्यकालीन युग में लोगों ने सचमुच ही पशुयज्ञ का वास्तविक रूप न समझकर पशु-हत्या आरंभ कर दी और घोड़े, गाय, बकरे एवं सर्प तक मार-मार कर होमने शुरु कर दिये।

यह हत्याकांड जब फैला तो उसके विरुद्ध जनता में घोर घृणा पैदा हुई। यज्ञों की निंदा हुई। लोग यज्ञों का विरोध करने लगे। बौद्ध और जैन धर्म ने इस प्रकार की हिंसा का डट कर विरोध किया और धीरे-धीरे वह अनर्थ बंद होता गया। बलि जैसी इन अज्ञानमूलक बातों का जितना विरोध हो, उतना ही उत्तम है और हमारे पवित्र धर्म को कलंकित करने वाली यह घृणित प्रथाएँ जितनी जल्दी बंद हो जायें, उतना ही अच्छा है।

वैदिक पशु-याग का वास्तविक तात्पर्य क्या है, नीचे की पंक्तियों में इस पर कुछ प्रकाश डाला जाता है।

उपनिषद् का वचन है-

"**कामक्रोधलोभादयः पशवः।**"

अर्थात- "काम, क्रोध, लोभ, मोह यह पशु हैं, इन्हीं को मारकर यज्ञ में हवन करना चाहिए।"

"**कामक्रोधसुलोभमोहपशुकांच्छित्वा विवेकासिना।**
भासं निर्विषयं परात्मसुखदं भुञ्जन्ति तेषां बुधाः॥"

(भैरवयामल)

अर्थात- "विवेकी पुरुष काम, क्रोध, लोभ और मोह रूपी पशुओं को विवेक रूपी तलवार से काट कर दूसरे प्राणियों को सुख देने वाले निर्विषय रूप मांस का भक्षण करते हैं।"

'महा-निर्वाण-तंत्र' में भी इसी आशय का श्लोक आया है।

"**कामक्रोधौ द्वौ पशू इमावेव मनसा बलिमर्पयेत्।**
कामक्रोधौ विघ्नकृतौ बलिं दत्वा जपं चरेत्॥"

अर्थात- "काम और क्रोध रूपी दोनों विघ्नकारी पशुओं को बलिदान करके उपासना करनी चाहिए, यही शास्त्रोक्त बलिदान का रहस्य है।"

आलंकारिक रूप से यह आत्मशुद्धि की, कुविचारों, पाप-तापों, कषाय-कल्मषों से बचने की शिक्षा है।

उपनिषद् का वचन है-

"**अश्वमेधो महायज्ञकथा। तद्राज्ञा ब्रह्मचर्यमाचरन्ति।**
सर्वेषां पूर्वोक्तब्रह्मयज्ञक्रमं मुक्तिक्रममिति॥"

(पाशुपतब्रह्मोपनिषद्)

"अश्वमेध बड़ा यज्ञ है, किंतु उसके अभ्यासी ब्रह्मचर्य ही पालते हैं। इस ब्रह्मचर्यात्मक यज्ञ का सिलसिला मुक्ति का उत्तरोत्तर कारण है।"

गीता में लिखा है कि मन और बुद्धि को अर्पण करना चाहिए। (१२/८), किंतु विषयासक्त मन, बुद्धि की संज्ञा पशु है और इनका अर्पण ही बलि है।

परमार्थसार में लिखा है कि '**मायापरिग्रहवशाद् बोधो मलिनः पुमान् पशुर्भवति**' अर्थात् माया के कारण मलिन बुद्धि होने से मनुष्य पशुभाव को प्राप्त होता है। तंत्र में कहा

है कि '**इंद्रियाणि पशून् हत्वा**' अर्थात् इंद्रिय रूपी पशु का वध करे।

एक विद्वान का कहना है कि पशु-जगत् में इंद्रियाँ सर्वोपरि हैं और उन्हीं का संचालन वहाँ प्रधान साधन है। किंतु मनुष्य में जीवात्मा सर्वोपरि है और जीवात्मा तथा इंद्रियों के मध्य में अंतःकरण है। इनके पशु स्वभाव को कामात्मक स्वार्थ के लिए व्यवहृत न कर ईश्वर के अनेक होने के संकल्प **एकोऽहं बहुस्याम्** अर्थात् इच्छा शक्ति की, जिसकी संज्ञा महाविद्या है, पूर्ति रूपी यज्ञ में व्यवहृत होने के लिए महाविद्या को समर्पित करना अर्थात् ईश्वर के दिव्य गुण, शक्ति, सामर्थ्य आदि के प्रकाशित करने योग्य बनाना ही यथार्थ पशु-बलि है। जीवात्मा रूपी होता को सद्बुद्धि रूपी स्रुवा में इस पशु स्वभाव के साथ संयोजित कर ब्रह्माग्नि में अर्पण करना अर्थात् ब्रह्म के निमित्त सृष्टि हित कार्य में प्रवृत्त करना यज्ञ में इनकी बलि करना है।

तंत्र के एक प्रसिद्ध लेखक ने अपने एक ग्रंथ में बकरे को काम, भैंस को क्रोध, विलाव को लोभ, मेढ़े को मोह और ऊँट को मात्सर्य कहा है और इन्हीं विकारों के त्याग को पशुबलि कहा है।

यजुर्वेद में ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनसे यह अभिप्राय निकलता है कि अग्नि, वायु और सूर्य ही पशु है। यथा-

"**अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त**॥"

अर्थात- अग्नि पशु था, उस के द्वारा यज्ञ किया।

"**वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त**॥"

अर्थात- वायु पशु था, उसके द्वारा यज्ञ किया।

"**सूर्यः पशुरासीत्तेनायजन्त**॥"

अर्थात- सूर्य पशु था, उसके द्वारा यज्ञ किया।

जैमिनिब्राह्मण ३.३.११ में '**पशवो वा इला**' इस पृथ्वी को ही पशु कहा गया है। क्या इन सब को काट-काट कर होमा

जायगा? अन्न से बनी हुई वस्तु तथा (रोटी, पूरी आदि) खाद्य पदार्थों को भी पशु माना गया है।

इसी तरह 'चरक संहिता' में 'अज' औषधि का वर्णन है:-

अजानामौषधिरजशृङ्गेति विज्ञायते।

(चरक संहिता प्र०)

क्या उपरोक्त वाक्य में वर्णित 'अज' बूटी के स्थान पर बकरी की औषधि बनाई जायेगी?

महाभारत में भी 'अज' का अर्थ औषधि और बीज ही किया गया है।

बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वा वैदिकी श्रुतिः।
अजसंज्ञानि बीजानि च्छागं नो हन्तुमर्हथ॥
नैष धर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः।

(महाभारत शान्तिपर्व- ३३७.४-५)

अर्थात-"बीजों का यज्ञ में हवन करना चाहिए, ऐसी ही वेद की श्रुति है।

'अज' संज्ञक बीज होते हैं। इसलिए बकरे का हनन करना उचित नहीं, जिस कर्म में पशु की हत्या होती है, वह सज्जनों का धर्म नहीं।"

वैद्यक ग्रंथों में अनेक पशु वाचक शब्द आते हैं। यथा- अश्व=अश्वगंधा। ऋषभ=ऋषभक कंद। श्वान=कुकुरमुत्ता। वराह=वाराहीकंद। काक=काकमाची। अज=अजमोद। मत्स्य=मत्स्याक्षी(मत्स्यगंधा)। लोम=जटामांसी। महिष=महिषाक्ष, गुग्गुल। मेष=चकवड़, मेषशृंगी (गुड़मार)। मातुल=धतूरा। मृग=सहदेवी बूटी। पशु=मोथरा। कुमारी=घृतकुमारी। रुधिर= केशर। पेश=जटामांसी। हृद=दारचीनी।

पुरुष सूक्त में लिखा है कि '**अबध्नन् पुरुषं पशुम्**'- अर्थात ईश्वर को ही पशु मान यज्ञ में समर्पण किया। ईश्वर के अपने को यज्ञ अथवा बलि करने से ही सृष्टि हुई और देवता आदि ने भी उन्हीं की

शक्ति को बलि अथवा प्रयोग कर सृष्टि यज्ञ किया, यही आदि पशुबलि हुई।

शतपथ ब्राह्मण (१.२.३.८) में अन्न-भोजन को ही आलंकारिक रूप में पशु कहा गया है। देखिये-

यदा पिष्टान्यथ लोमानि भवन्ति। यदाप आनयत्यथ त्वग्भवति। यदा संयौत्यथ मांसं भवति। सन्ततइव हि सतर्हि भवति। संततमिव हि मांसं यदाशृतोऽथास्थि भवति। दारुण इव हि तर्हि भवति। दारुणमित्यस्थ्यथ यदुद्वासयिष्यन्नभिघारयति। तंमज्जानं दधात्येषो सा सम्पद्यदाहुः पांक्त : पशुरिति।

अर्थात- अन्न का पिसा हुआ आटा ही रोम (बाल) है। जो उस पिसे आटे में जल मिलाते हैं, तो वह चर्म हो जाता है; क्योंकि चर्म के समान कोमल होता है। जब वह आटा गूंधा जाता है तो वह मांस कहलाता है, क्योंकि तब वह मांस के समान चिकना होता है। जब वह सेंका जाता है, तो वह अस्थि कहलाता है, क्योंकि अस्थि कड़ी होती है। जब उसमें घी डाला जाता है, तो उसका नाम मज्जा हो जाता है।

ऊपर अनेक प्रकार के पशुवाचक शब्द बतलाए गए हैं, जो हमारे साहित्य में उपलब्ध हैं। मांसलोलुपों ने केवल उसके स्थूल अर्थ को लेकर बलि करना आरंभ कर दिया, यह अर्थ का अनर्थ है- अशास्त्रोक्त है।

निश्चय ही पशु बलि हिंदू धर्म के सर्वथा विपरीत एक असुर कर्म है, जिसे किन्हीं मांसाहारियों ने अपनी जिह्वालोलुपता की पूर्ति के लिये धर्म का बाना पहनाने का दु:साहस किया है। राजा के सैनिक तलवार चलाने का अभ्यास पशुओं की गरदन पर करते थे और अभ्यास के समय वे तलवार को काली मानकर उसकी जय बोलते थे। पीछे इस विशुद्ध सैनिक कृत्य को धर्म का भी रूप दिया जाने लगा, वह बहुत ही आपत्ति जनक है। कोई मांस खाये

यह दूसरी बात है, पर धर्म और देवता के नाम का इसके लिए उपयोग करना अनुचित है।

पशुबलि से नरक मिलता है

यह कहा जाता है कि देवी या देवता पर बलि करने वाला, यज्ञ में पशु को काट कर आहुति देने वाला अथवा जो पशु यज्ञ में होमा जाता है व वध होता है, वह स्वर्ग को जाता है। बुद्धिवादी युग में आज ऐसी बातों को कोई स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं कि पाप करने से पुण्य होता हो, दुःख देने से सुख मिले, पशु वध जैसा अत्याचार करने से स्वर्ग प्राप्त हो या वह पशु ही स्वर्ग का टिकट कटा ले। इस संबंध में एक कवि ने मुँह तोड़ उत्तर दिया है-

नाहं स्वर्गफलोपयोगतृषितो नाभ्यर्थितस्त्वं मया।
संतुष्टस्तृण भक्षणेन सततं साधो! न युक्तं तव॥
स्वर्गे यान्ति यदि त्वया विनिहता यज्ञे ध्रुवं प्राणिनो।
यज्ञं किं न करोषि मातृ-पितृभिः पुत्रैस्तथा बान्धवैः॥

अर्थात्- "मुझे स्वर्ग फल के भोगने की इच्छा नहीं है। और न ही मैंने तुमसे यह प्रार्थना ही की है कि तुम मुझे यज्ञ में डाल कर स्वर्ग में पहुँचाओ। मुझे तो घास, आदि खाकर ही संतोष है। इसलिए तुम्हें यह काम शोभा नहीं देता। यदि यही मान लिया जाए कि तुम्हारे द्वारा यज्ञ में होमे जाने वाले प्राणी स्वर्ग में जाते हैं, तो फिर तुम अपने प्रिय से प्रिय माता, पिता, पुत्र और भाइयों को यज्ञ में होम कर उन्हें स्वर्ग क्यों नहीं भेजते?

कवि ने सच्चे तर्क से काम लिया है। यदि इस प्रकार स्वर्ग प्राप्त हो जाए तो सबसे पहले अपने प्रियजनों को ही भेजना चाहिए। स्वयं भी हर एक व्यक्ति सुख की आशा में रहता है, दिन-रात उसी

के लिए प्रयत्नशील रहता है, क्यों नहीं वह स्वयं अपनी आहुति देकर सीधा स्वर्ग का भागी बनता है?

चार्वाक संप्रदाय के ग्रंथों में इसी संबंध का एक श्लोक मिलता है-

पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हन्यते॥

अर्थात- "यदि ज्योतिष्टोमादि में मारा हुआ पशु स्वर्ग को चला जाता है, तो यजमान अपने पिता को यज्ञ में क्यों नहीं मार डालता, ताकि उसे भी सीधे स्वर्ग की प्राप्ति हो?"

मनुष्य जैसा कर्म करता है, वैसे ही फल को वह प्राप्त करता है, बुरे का बुरा और अच्छे का अच्छा फल होता है। बबूल को बो कर आम कदापि नहीं खाया जा सकता। जैसा कर्म या व्यवहार हम दूसरों के साथ करते हैं, वैसा ही हमारे साथ भी किया जाता है। पशु-बध एक क्रूर कर्म है, जिसका अच्छा फल कोई भी विचारशील व्यक्ति नहीं बता सकता। धर्मशास्त्रों में अनेकों ऐसे उदाहरण मिलते हैं-

देवोपहार व्याजेन यज्ञाव्याजेन येऽथच।
हन्ति जन्तून् गत घृणा घोरां ते यान्ति दुर्गतिम्॥

अर्थात- "जो लोग देवता पर चढ़ावे या यज्ञ के बहाने पशुओं को मारते हैं, वह निर्दयी घोर दुर्गति को प्राप्त होते हैं।"

यूपं छित्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्।
यद्येवं गम्यते स्वर्गं नरकं केन गम्यते॥

अर्थात- "यूप को काट कर और पशुओं का वध करके और उनका खून बहा कर यदि स्वर्ग मिलता हो, तो नरक कौन जायगा?"

प्राणिघातात् ये धर्मं को हनं मूढमानसाः।
स वांछति सुधावृष्टिं कृष्णाहिमुखकोटरात्॥

अर्थात्- "जो मूढ़ मति वाले व्यक्ति अन्य प्राणियों का वध करके धर्म की आकांक्षा करते हैं, वह काले साँप के मुख से अमृत की इच्छा रखते हैं।"

अन्धे तमसि मज्जामः पशुभयैर्यजामहे।
हिंसां नाम यो वेद धर्मो न भूतो न भविष्यति॥

अर्थात्- "हम में से जो व्यक्ति यज्ञ में पशु का वध करते हैं, वह महान अंधकार की ओर अग्रसर होते हैं। हिंसा का परिणाम न कभी धर्म हुआ, न होगा।"

छागं ये मानवाः हन्ति, छागो मृत्वा च खड्गभृत्।
सुरथं परलोके हि, पशवो जघ्नुरित्युत॥

अर्थात्- "जो व्यक्ति बकरे का हनन करता है, उसका वह बकरा परलोक में खड्ग को धारण करके हनन करता है। जैसे बलि में दिए हुए पशु ने परलोक में सुरथ राजा का हनन किया था।"

'पद्मोत्तर खण्ड' में पार्वती जी अपने श्रीमुख से कहती है।

स्वयं कामाशये भूत्वा योऽज्ञानेन विमोहितः।
हन्त्यन्यान् विविधान् जीवान्, कृत्वा मन्नाम शंकरः॥
तद्राज्यवंश सम्पत्तिज्ञानदारादिसम्पदाम्।
अचिराद्वै भवेन्नाशो मृतः स नरकं व्रजेत्॥

पद्मोत्तर. (१०४/१०५)

अर्थात्- "हे शंकर ! स्वयं फल की इच्छा वाले होकर अज्ञान से मोह को पाया हुआ जो व्यक्ति, मेरे नाम से विभिन्न प्रकार के जीवों का बध करता है, उसका राज्य, वंश, संपत्ति, ज्ञान और स्त्री आदि समस्त ऐश्वर्य कुछ ही समय में नष्ट हो जाते हैं और वह मृत्यु को प्राप्त होकर नरक में जाता है।"

देवयज्ञे पितृश्राद्धे तथा मांगल्यकर्मणि।
तस्यैव नरके वासो यः कुर्याज्जीवघातनम्॥
मद्व्याजेन पशून् हत्वा, यो यज्ञेन सह बन्धुभिः।
तङ्गात्रलोमसंख्यादैरसिपत्रवने वसेत्॥
आत्मपुत्रकलत्रादिसुसम्पत्तिकुलेच्छया।
यो दुरात्मा पशून् हन्यात् आत्मादीन् घातयेत् स वै॥

अर्थात्- "देव यज्ञ, पितृ श्राद्ध तथा अन्य कल्याणकारी कार्यों में जो व्यक्ति जीव हिंसा करता है, वह नरक में जाता है। मेरे बहाने से जो मनुष्य पशु का वध करके अपने संबंधियों सहित मांस खाता है, पशु के शरीर के जितने रोम होते हैं, उतने वर्ष तक असिपत्र नामक नरक में रहता है। इसी तरह जो मनुष्य आत्मा स्त्री, पुत्र, लक्ष्मी और कुल की इच्छा से पशुओं की हिंसा करता है, वह स्वयं अपना नाश करता है।"

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि पशु-बध का परिणाम नरक ही होता है, स्वर्ग कदापि नहीं हो सकता।

पशुबलि का निषेध

वेद में एक भी ऐसा मंत्र नहीं है जिसमें किसी भी प्राणी की हिंसा की ओर संकेत किया गया हो, बल्कि उन्हें न मारने के आदेश स्थान-स्थान पर मिलते हैं-

"मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।" *-ऋग्वेद १/११४/८*

"हमारी गायों और घोड़ों को मत मार।"

इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम्।
त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्।"

-यजु० १३/५०

अर्थात- "ऊन जैसे बालों वाले बकरी, ऊंट आदि चौपायों और पक्षियों आदि दो पगों वालों को मत मार।"

न कि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि। मन्त्रश्रुत्यं चरामसि॥

(सामवेद, छंद आर्चिक, अध्याय २, ख० ७ के द्वितीय मंत्र)

इसमें स्पष्टतया पशुबलि का निषेध किया है और कहा है कि हे देवों! हम हिंसा नहीं करते और न ही ऐसा अनुष्ठान करते हैं, वेद मंत्र के आदेशानुसार आचारण करते हैं।

इससे स्पष्ट और निर्णय नहीं हो सकता, जिसमें देवों को संबोधित करते हुए कहा गया है कि हम तुम्हारे लिए हिंसा करके मांस की आहुति नहीं करते और कोई भी वेदनिषिद्ध कर्म नहीं करते, बल्कि हम वह आचरण करते हैं जिसका वेद में आदेश है।

यजुर्वेद में अहिंसा का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि-

अश्वं............मा हिꣳसीः......... ॥ १३/४२ ॥
गां मा हिꣳसीरदितिं विराजम्...... ॥ १३/४३ ॥
अविं...........मा हिꣳसीः.......... ॥ १३/४४ ॥
इमं मा हिꣳसीर्द्विपादं पशुꣳ........ ॥ १३/४७ ॥
इमं मा हिꣳसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं.... ॥ १३/४८ ॥
घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिꣳसीः ॥१३/४९ ॥
इममूर्णायुं..........मां हिꣳसीः........ ॥ १३/५० ॥
ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैन ꣳहिꣳसीः ॥ ४/१ ॥
मा हिꣳ सिष्ट पितरः केनचिन्नो ॥ १९/६२ ॥
मा हिꣳसीः पुरुषं जगत् ॥ १६/३ ॥
मा हिꣳसीस्तन्वा प्रजाः ॥ १२/३२ ॥

अर्थात– "घोड़े की हिंसा न कर। जो मारने योग्य नहीं है, उसकी हिंसा न कर। भेड़ की हिंसा न कर, दो पैर वाले प्राणियों की हिंसा न कर, घोड़े की हिंसा न कर, दूध और घी देने के कारण गाय की हिंसा न कर, ऊन देने के कारण बकरे की हिंसा न कर। हे औषधि! रक्षण कर, हे शस्त्र! हिंसा न कर, हे रक्षकों! किसी की भी हिंसा न करो, मनुष्य की हिंसा न कर, प्रजाओं की हिंसा न कर, हिंसा को तू छोड़ दे।

महाभारत में हिंसा का विरोध

महाभारत में अनेक स्थलों पर पशुबलि का निषेध है। उसमें से कुछ प्रमाण नीचे प्रस्तुत करते हैं-

सुरां मत्स्यान्मधु मांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद्वेदेषु कल्पितम्॥ ९ ॥
मानान्मोहाच्च लोभाच्च लौल्यमेतत्प्रकल्पितम्।
विष्णुमेवाभिजानन्ति सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणाः ॥ १० ॥
पायसैः सुमनोभिश्च तस्यापि यजनं स्मृतम्।
यज्ञियाश्चैव ये वृक्षा वेदेषु परिकल्पिताः ॥ ११ ॥

(महाभारत शान्तिपर्व, अ० २६५)

अर्थात- "सुरा, मत्स्य, शराब, मांस, आसव आदि सब व्यवहार धूर्तों का चलाया हुआ है। उसका वेदों में कोई प्रमाण नहीं है। मान, मोह, लोभ और जिह्वा की लोलुपता के कारण यह बनाया गया है।"

शांतिपर्व के २६५ वें अध्याय में यज्ञ में पशुबध करने वालों की घोर निंदा की गई है और ब्राह्मणों का कर्तव्य बताते हुए भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं-

अव्यवस्थितमर्यादैर्विमूढैर्नास्तिकैर्नरै :।
संशयात्मभिरव्यक्तैर्हिंसासमनुवर्णिता॥ ४ ॥
सर्वकर्मस्वहिंसा हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत्।
कामकाराद्विहिंसन्ति बहिर्वेद्यां पशून् नराः ॥ ५ ॥
तस्मात् प्रमाणतः कार्यो धर्मः सूक्ष्मो विजानता।
अहिंसा सर्वभूतेभ्यो धर्मेभ्यो ज्यायसी मता॥ ६ ॥

यदि यज्ञांश्च वृक्षांश्च यूपांश्चोद्दिश्यमानवाः।
वृथा मांसं न खादन्ति, नैष धर्मः प्रशस्यते॥ ७॥

अर्थात- "उच्छृंखल, मर्यादाशून्य, नास्तिक, मूढ़ तथा संशयात्मक लोगों ने यज्ञ में हिंसा का विधान वर्णित किया है। वस्तुतः यज्ञ में हिंसा नहीं करनी चाहिए। धर्म में आस्था रखने वाले मनुजी ने भी अहिंसा की प्रशंसा की है। पंडितों का यही कर्तव्य है कि उसके अनुसार सूक्ष्म धर्मानुष्ठान करें। सभी धर्मों में अहिंसा को ही श्रेष्ठ धर्म माना गया है। जो मनुष्य यज्ञ, वृक्ष और यूप के उद्देश्य से पशु छेदन करके वृथा मांस खाते हैं, उनका धर्म किसी प्रकार प्रशंसनीय नहीं है।"

इसी पर्व में अन्यत्र लिखा है कि जब यज्ञ का विचार किया गया और यह प्रश्न आया कि यज्ञ में पशु-हिंसा होनी चाहिए, या नहीं, तो उस समय ब्राह्मणों और ऋषियों ने राय दी कि पशु हिंसा नहीं होनी चाहिए। बलि के प्रसंग में जो 'अज' शब्द का प्रयोग हुआ है, उससे लोग बकरा शब्द ले लेते हैं, किंतु-

"**अजसंज्ञानि बीजानि वै त्रिवर्षोषितानि च।**"

अर्थात- "तीन वर्ष के पुराने बीजों का नाम 'अज' है।" यहाँ बकरा अर्थ तो मांसलोलुपों ने किया है।

इसकी पुष्टि में और स्थान पर भी आया है-

"**बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः।**
अजसंज्ञानि बीजानि च्छागं नो हन्तुमर्हथ॥ ४॥"
"**नैष धर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः॥**"

(महाभारत शांतिपर्व अ० ३३७.४-५)

अर्थात- "यज्ञ में बीजों से ही हवन करना चाहिए, यह वेद की श्रुति है। 'अज' संज्ञा का अर्थ बीज होता है। अतः बकरे की हत्या नहीं करनी चाहिए। जिस कर्म में पशुओं की हत्या होती हो, वह श्रेष्ठ पुरुषों का धर्म नहीं है।"

महामना भीष्म ने युधिष्ठिर से एक बार कहा था कि "प्राणियों की हत्या से धर्म लाभ होता हो और उसके फलस्वरूप स्वर्ग मिलता हो, तब संसारी पुरुषों के लिए नरक कैसे प्राप्त होगा? हे युधिष्ठिर! प्राणि हिंसा निश्चय रूप से यज्ञ में नहीं होती। यज्ञ तो हिंसा रहित होते हैं। इसलिए हमेशा हिंसा रहित यज्ञ ही करने चाहिए।"

अश्वमेध के हिंसा रहित होने का प्रमाण महाभारत के शांतिपर्व में देखा जा सकता है। इसमें वसु महाराज द्वारा अश्वमेध करने का रोचक वृतांत है। इसमें आचार्य बृहस्पति के अतिरिक्त कपिल, कठ, कण्व, तैत्तिरि आदि ऋत्विक थे। महाभारतकाल के अनुसार यहाँ "**न तत्र पशुघातोऽभूत्**" पशुओं की किसी तरह की हत्या नहीं की गई। यों तो यज्ञ में किसी तरह की हिंसा वर्जित है, फिर अश्वमेध के अश्व को तो स्तुत्य ठहराया गया है। आचार्य महीधर के शब्दों में "**हे अश्व, यस्त्वमभिधा असि। अभिधीयते स्तूयत इत्यभिधाः।**" अर्थात्- हे अश्वमेध के अश्व, आप स्तुत्य हैं।

-महीधरभाष्य यजुर्वेद २२/३

वैदिक यज्ञों में अश्वमेध का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे 'महाक्रतु' कहा गया है। इसकी ऐतिहासिकता सर्वथा असंदिग्ध है। राष्ट्रहित के लिए-दैवी शक्तियों के आह्वान और मानवीय सामर्थ्य को नियोजन करने वाली इस प्रक्रिया में किसी भ्रांति की रत्तीभर गुंजाइश नहीं। ऋग्वेद में इससे सम्बधित दो मंत्र हैं। यजुर्वेद में २२ से २५ अध्याय में इसका विधि-विधान दिया गया है।

इतिहास में ऐसे अश्वमेधों का वर्णन उपलब्ध है, जिसमें घोड़ा तो क्या, चींटी तक की भी हत्या नहीं की गई। देखिये-

तस्य यज्ञो महानासीदश्वमेधो महात्मनः।
बृहस्पतिरुपाध्यायस्तत्र होता बभूव ह॥ ५॥
प्रजापतिसुताश्चात्र सदस्याश्चाभवंस्त्रयः।
ऋषिर्मेधातिथिश्चैव ताण्ड्यश्चैव महानृषिः॥ ७॥

ऋषिः शान्तिर्महाभागस्तथा वेदशिराश्च यः।
ऋषिश्रेष्ठश्च कपिलः शालिहोत्रपिता स्मृतः ॥ ८ ॥
आद्यः कठस्तैत्तिरिश्च वैशम्पायनपूर्वजः।
कण्वोऽथ देवहोत्रश्च एते षोडशकीर्तिताः ॥९ ॥
संभूताः सर्वसम्भारास्तस्मिन् राजन्महाक्रतौ।
न तत्र पशुघातोऽभूत् स राजैवं स्थितोऽभवत्॥ १० ॥

–महाभारत शान्ति० ३३६. ५–१०

अर्थात– उस राजा का बहुत विशाल अश्वमेध हुआ। उसमें वृहस्पति उपाध्याय थे। प्रजापति के पुत्र सदस्य बने। मेधातिथि, तांड्य, शांति, वेदशिरा, कपिल, कठ, तैत्तिरि और बड़े-बड़े ऋषि उस यज्ञ में ऋत्विज् थे। उस यज्ञ में सामग्री तो विपुल थी, पर एक भी पशु का वध न हुआ। महाभारत के अश्वमेध पर्व में स्पष्ट उल्लेख है–

"पशुबलि के बांधने के खूंटे को गाड़ कर, पशुओं को मारकर, खून-खच्चर मचा कर यदि कोई स्वर्ग चला जाएगा, तो नरक कौन जाएगा?",

(अश्वमेध पर्व अ० ६१, श्लोक १३,१४)

पुराणों की पशुबलि विरोधी घोषणाएँ

पुराणों में स्थल-स्थल पर पशुबलि और हिंसा का विरोध किया गया है। उनमें से कुछ का वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

"पद्म पुराण पद्मोत्तर खण्ड" अध्याय १०४ व १०५ में पार्वतीजी शिवजी के प्रति यज्ञों में पशुवध के संबंध में कहती हैं-

ये ममार्चनमित्युक्त्वा प्राणिहिंसनतत्पराः।
तत्पूजनं ममामेध्यं यद्दोषातदधोगतिः॥
मदर्थे शिव! कुर्वन्ति तामसा जीवघातनम्।
आकल्पकोटि निरये तेषां वासो न संशयः॥
यस्तु यज्ञे पशून्हत्वा कुर्याच्छोणितकर्दमान्।
श्वपचन्नरके तावद्यावल्लोमानि तस्य वै॥
जानाति को वेद पुराण तत्वं ये कर्मठाः पण्डितमानयुक्ताः।
लोकाधमास्ते नरकं पतन्ति कुर्वन्ति मूर्खाः पशुघातनं चेत्॥

अर्थात- "जो व्यक्ति मेरी पूजा के विचार से प्राणियों का वध करते हैं, उनकी वह पूजा अपवित्र है। इस हिंसा के दोष से निश्चय ही उनकी अधोगति होगी। हे शिव! तामसिक वृत्ति के व्यक्ति ही ऐसा करते हैं। करोड़ों कल्पों तक उनका नरक में वास होता है, यह निश्चय है। जो व्यक्ति यज्ञ में पशुओं को मारते हैं, उन्हें नरक में असह्य कष्ट प्राप्त होते हैं। वास्तव में अभिमानयुक्त कर्मकांडी वेद और पुराण के तत्त्व को नहीं समझते। पशुओं की हत्या करने वाले लोकाधम और मूर्ख हैं, वे अवश्य नरक में जाते हैं। "

कोई निर्दोष जीव चाहे यज्ञ में मारकर देवी के ऊपर चढ़ाया जाए, चाहे वह कसाईखाने में काटा जाए, हर हालत में हत्या

ही है और उसका परिणाम वही प्राप्त होता है, जो हत्यारे को होना चाहिए। प्राचीन बर्हिष राजा ने यज्ञ में हिंसा की थी। उससे नारद मुनि कहते हैं-

भो भोः प्रजापते राजन्पशून्पश्य त्वयाध्वरे।
संज्ञापिताञ्जीवसंघान्निर्घृणेन सहस्रशः॥
एते त्वां सम्प्रतीक्षन्ते स्मरन्तो वैशसं तव।
सम्परेतमयः कूटैश्छिन्दन्त्युत्थितमन्यवः॥

(भागवत ४/२५/७-८)

अर्थात- "हे राजन्! तेरे यज्ञ में सहस्त्रों पशु निर्दयतापूर्वक मारे गए। वे तेरी क्रूरता को याद करते हुए क्रोध में भरे हुए तीक्ष्ण हथियारों से तुझे काटने को बैठे हैं।"

निम्न श्लोक में पशुवध का परिणामकर्ता को प्राप्त होना बताया गया है-

तं यज्ञपशवोऽनेन संज्ञप्ता येऽदयालुना।
कुठारैश्चिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरन्तोऽमीवमस्य तत्॥

(भागवत ४/२८/२६)

अर्थात- "इस दयाहीन ने जो यज्ञ में पशुवध किया था, वही पशु क्रोध में आकर उस कुकर्म को याद करते हुए, उसको कुल्हाड़ों से छिन्न-भिन्न करने लगे।"

भागवत स्कन्ध ११, अध्याय २१ के श्लोक ३० में आया है कि, जो मनुष्य श्राद्ध और यज्ञ में पशुवध करते हैं, वास्तव में वह मांस के लोभ से ऐसा करते हैं और निश्चय रूप से छल और कपट करने वाले हैं-

"हिंसाविहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया।
यजन्ते देवता यज्ञैः पितृभूतपतीन् खलाः॥"

वध होने वाले पशुओं की जो रक्षा करते हैं, पशुहिंसा के संबंध में फैली हुई भ्रांतियों को जनता के हृदय से

निकालने का प्रयत्न करते हैं, पशुवध जैसे अन्याय और अत्याचार को सहन न करके जो उसके विरोध में आवाज उठाते हैं, उन्हें अभय दान देते हैं, उनके संबंध में भागवत ३/३/७ में लिखा है-

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ।
जीवाभयदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि॥

अर्थात- "हे अकलंक! सर्व वेद, यज्ञ, तप, दान उस मनुष्य के पुण्य के सामने अंशमात्र भी नहीं हैं, जो जीवों को अभयदान प्रदान करके रक्षा करते हैं।"

"जो जीवन पर्यंत किसी प्रकार का मांस नहीं खाता, उसे स्वर्ग में विपुल स्थान प्राप्त होता है। यदि वह मांस खाता है, तो सारे जप, होम, नियम, तीर्थ स्नान व्यर्थ है।"

-विष्णु पुराण

हिंसा भार्या त्वधर्मस्य तयोर्जज्ञे तथाऽनृतम्।
कन्या च निकृतिस्ताभ्यां भयं नरकमेव च॥
माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेनयोः।
तयोर्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं हतापहारिणम्॥
वेदना स्वसुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात्।
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे॥

(विष्णु पुराण१/७)

उपरोक्त श्लोकों में अधर्म के परिवार की गणना करते हुए बताया गया है कि अधर्म की पत्नी हिंसा है। इन दोनों के द्वारा असत्य और दुष्कर्म उत्पन्न होते हैं। फिर उनकी संतानें भय, नरक, माया और वेदना जन्मती हैं। इनका वंश आगे बढ़ता है, तो मृत्यु, दुःख, व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध जैसे क्लेशकारक दुष्परिणाम सामने आ जाते हैं।

"जिस धर्म में मांस और मद्य सेवन का विधान है, वह धर्म केवल नरक के लिये होता है।" -नारद

'नारद पंचरात्र' में श्रुति को माता कहा गया है और माता किसी भी पुत्र की हत्या नहीं करना चाहती। सभी प्राणी उसके सामने एक समान होते हैं-

श्रुतिर्वदति विश्वस्य जनजीवहितं सदा।
कस्यापि द्रोहजननं न वक्ति प्रभु तत्परा ॥

अर्थात- श्रुति माता की भाँति सब प्राणियों के हितार्थ उपदेश करती है, वह किसी जाति या प्राणी के वध की आज्ञा नहीं देती।

स्मृतियों में अहिंसा का प्रतिपादन

भारतीय धार्मिक साहित्य में स्मृतियों का एक विशिष्ट स्थान है। धार्मिक बातों में स्मृतियों से आधिक मान्य कोई ग्रंथ नहीं है, जिनमें वेद में वर्णित धार्मिक विषयों को अधिक विकसित रूप दिया गया है। स्मृतियों में प्रधानतया तीन विषयों का प्रतिपादन है- आचार, व्यवहार और प्रायश्चित। स्मृतियों को धर्म का कानून कह सकते हैं। इस कानून की कसौटी पर बलि और हिंसा को भी रखना चाहिए। स्मृतियों में मिलने वाले उदाहरणों को जो अहिंसा का प्रतिपादन करते हैं, नीचे दे रहे हैं।

पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुभश्च बध्यते यास्तु वाहयन्॥
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥

(मनुस्मृति ३/६८, ६९, ७०)

अर्थात- "प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली और जल पात्र यह पाँच हिंसा के स्थान है। इनको काम में लाने से गृहस्थ पाप में बँधता है। इनसे छूटने के लिए (ब्रह्मयज्ञ) अध्यापन, (पितृयज्ञ) पितरों की तृप्ति, (देव यज्ञ) हवन, (भूत यज्ञ) अन्नदान, (नृयज्ञ) अतिथि सत्कार- यह पाँच महायज्ञ ऋषियों ने बताये हैं।"

मां स भक्षयिताऽमुत्र यस्य मांसमिहादम्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

अर्थात- ''जिसका मैं मांस खा रहा हूँ, वह परलोक में मेरा मांस खाएगा। मांस का यही अर्थ है।''

(मनुस्मृति अ० ५/५५)

अनुमन्ता विशंसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्त्ता चोपहर्त्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥

(मनुस्मृति ५/५१)

अर्थात- ''पशुबध के लिए सम्मति देने वाला, मांस को काटने, पशु आदि के मारने, उनको मारने के लिए लेने और बेचने, मांस को पकाने, परोसने और खाने वाले यह आठ मनुष्य घातक हैं।''

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्॥

(मनुस्मृति ५.४८)

अर्थात- ''प्राणियों के वध के बिना मांस प्राप्त नहीं हो सकता। प्राणी की हिंसा से स्वर्ग उपलब्ध नहीं होता। इसलिए मांस का त्याग करना चाहिए।''

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित्सुखमेधते॥

(मनुस्मृति ५. ४५)

अर्थात- ''जो व्यक्ति अपने सुख के लिए अहिंसक पशु की हिंसा करता है, वह जीते हुए भी मरा हुआ है। उसे कुछ भी सुख नहीं मिलता।''

पशु हिंसा से होने वाली हानि की ओर संकेत करते हुए कहा है-

यावन्ति पशुरोमाणि तावत्कृत्वो ह मारणम्।
वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति प्रेत्य जन्मनि जन्मनि॥

(मनुस्मृति ५. ३८)

अर्थात- "वृथा पशुओं का वध करने वाला व्यक्ति उतनी बार प्रति जन्म हिंस्य बनता है जितने कि उसके शरीर पर बाल होते हैं।"

वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः।
मांसानि च न खादेद्यस्तयोः पुण्यफलं समम्॥

(मनुस्मृति ५. ५३)

अर्थात- "मांस भक्षण न करने वाले और सौ वर्ष तक हर वर्ष अश्वमेध यज्ञ करने वाले को समान फल की प्राप्ति होती है।"

पराशर स्मृति में यज्ञों तथा श्राद्धों में पशुवध का निषेध किया गया है और ऐसा करने वाले को मूर्ख कहा गया है।

यस्तु प्राणिवधं कृत्वा देवान् पितृंश्च तर्पयेत्।
सोऽविद्वाश्चन्दनं दग्ध्वा कुर्यादङ्गारलेपनम्॥

अर्थात- "जो व्यक्ति प्राणियों की हत्या कर, उनके मांस से देवताओं और पितरों का तर्पण करता है, वह ऐसा ही कर्म करता है जैसे एक मूर्ख चंदन को जला कर अंगारों का लेपन करता है।"

याज्ञवल्क्य स्मृति में मांस न खाने वाले की प्रशंसा की है, यथा -

सर्वान्कामानवाप्नोति वाजिमेधफलं तथा।
गृहेऽपि निवसन्विप्रो मुनिर्मांसविवर्जनात्॥

(याज्ञ० १. १८१)

अर्थात- विद्वान सभी इच्छाओं तथा अश्वमेध के फल को पाता है। वह गृहस्थ मुनि है, जो मांस भक्षण नहीं करता।

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि स्मृतियाँ, जिन्हें धर्म का कानून मानते हैं, उनमें भी मांस भक्षण, हिंसा व पशुवध का निषेध

किया गया है। उनसे होने वाले दुःखदायी परिणामों पर भी प्रकाश डाला गया है। जहाँ चूल्हा, चक्की आदि में होने वाले हिंसा के लिए प्रायश्चित का विधान बताया गया है, वहाँ हिंसा और बलि जैसे क्रूर कर्म के लिए कैसे समर्थन किया जा सकता है? इसके विपरीत उनमें हिंसा न करने वाले को अनंत सुख की प्राप्ति और सैकड़ों अश्वमेध यज्ञों के समान फल बताया गया है।

यज्ञों में पशुबलि का निषेध

यज्ञों के संबंध में यह कलंक लगाना किसी भी प्रकार उचित नहीं कि उनमें बलि अर्थात हिंसा का विधान है। मध्यकाल में कुछ लोगों ने ऐसे कुत्सित कर्म करके यज्ञ को बदनाम अवश्य किया है, पर उनके कृत्यों से यज्ञ की शाश्वत मूल भावना में वस्तुतः कोई परिवर्तन नहीं होता। यज्ञ का उद्देश्य महान है। वह संपूर्ण संसार को प्राणदान करने वाला है। गंगा में कोई व्यक्ति गंदगी फेंक दे, तो उससे गंगा कलंकित नहीं होती। इसी प्रकार पशु-हिंसा का अनर्थ, उनके नाम पर किसी समय किया भी गया हो, तो भी यज्ञ भगवान का विशुद्ध रूप सदा पवित्र ही रहेगा।

शास्त्रों में यज्ञ को 'अध्वर' कहा गया है। अध्वर का अर्थ है- वह कार्य जिसमें हिंसा न होती हो। यज्ञ के ऋत्विजों में एक सदस्य तो विशेष रूप से इसलिए नियुक्त होता है कि कही कोई हिंसा तो इस पुण्य कार्य में नहीं हो रही है। इस निरीक्षक को 'अध्वर्यु' कहते हैं। विचार करने की बात है कि जिस यज्ञ में हिंसा न होने का इतना ध्यान रखा गया है। "पाँच भू संस्कार" की क्रिया में छोटे-छोटे जीव-जंतुओं की प्राण रक्षा के लिए पहले से ही पूरी सावधानी बरतने की व्यवस्था है। उस कार्य में पशु सरीखे बड़े-बड़े जीवों की निर्दय हत्या करने का विधान कैसे हो सकता है?

जिन ब्राह्मण ग्रंथों में पशु-यज्ञ का वर्णन है, वह केवल अलंकार रूप है। उसमें एक कथानक बनाकर किसी सूक्ष्म विज्ञान पर प्रकाश डाला गया है। लोग उस आर्य शैली के वास्तविक तात्पर्य को भूलकर अर्थ का अनर्थ करने लगे। उदाहरण के लिए-

जैमिनि ब्राह्मण ३.३.११ में "**पशवो वा इला**" इस पृथ्वी को ही पशु कहा गया है। अन्य स्थानों पर जीवात्मा को भी पशु कहा गया है। क्या इन सबको काट-काट कर होमा जायगा?

मनुस्मृति में नर यज्ञ शब्द अतिथि पूजन के लिए आया है। "**नृयज्ञोऽतिथि पूजनम्।**"

यदि कोई व्यक्ति अतिथि पूजन न करके मनुष्यों को मारना आरंभ कर दे, तो इसे मनुष्य का दोष नहीं, वरन् उसकी बुद्धि का ही दोष कहा जाएगा। इस प्रकार यज्ञ में प्राणिहिंसा की बात किसी भी प्रकार से शास्त्रानुमोदित नहीं हो सकती। शास्त्रकार तो "**अध्वर इति यज्ञानाम्-ध्वरतिर्हिंसाकर्मा: तत्प्रतिषेध:**" निरुक्त २/७ श. अर्थात्- 'अध्वर' यह यज्ञ का नाम है, जिसका अर्थ हिंसा रहित कर्म है, का उद्घोष करते हैं। वैदिक वाङ्मय में इस तरह के अनगिनत कथन हैं। यथा-

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति॥ -*ऋ० १/१/४*

अर्थात- हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर! तू हिंसा रहित यज्ञों में ही व्याप्त होता है और ऐसे ही यज्ञों को सत्यनिष्ठ विद्वान लोग सदा स्वीकार करते हैं।

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्।
वर्धमानं स्वे दमे॥ -*ऋ० १/१/८*

यहाँ भी परमेश्वर को अध्वरों अर्थात्- हिंसा रहित सब कर्मों में विराजमान बताया गया है। ऋग्वेद में ही एक अन्य स्थान पर कहा गया है-

स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य
चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति॥

-*ऋ० १/१२८/४*

अर्थात- परमेश्वर और वेदविद् पुरोहित हिंसा रहित यज्ञ

का ही मनुष्यों को सदा उपदेश देते हैं। अत्रि स्मृति के अनुसार यज्ञ में अग्नि का उपयोग तो किया जाता है, पर साथ ही पुरोहितों और याजकों में से प्रत्येक को यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं समिधाओं या शाकल्य में कृमि-कीटक तो नहीं है और उस गर्मी से किन्हीं चींटी जैसे प्राणियों की जीवन हानि तो नहीं हो रही। जहाँ इतनी सतर्कता का निर्देश हो, वहाँ प्राणिबध की तो कल्पना तक नहीं की जा सकती।

दो अर्थ वाले शब्दों का प्रयोग जहाँ होता हो, वहाँ बुद्धिमत्ता यही कहती है कि प्रसंग की पूर्वा पर संगति भी बिठाई जाय और यह ध्यान भी रखा जाय कि प्रस्तुत करने वालों का मंतव्य या उद्देश्य क्या रहा है? औचित्य का ध्यान रखे बिना दो अर्थ वाले शब्दों का अर्थ कुछ से कुछ मूल मान्यता से सर्वथा विपरीत कर देना- अनर्थ ही कहा जाएगा। ऐसी ही दुर्भाग्य पूर्ण विडंबना किसी-किसी उद्धत अर्थ करने वाले ने 'मेध' 'आलभन' एवं 'बलि' शब्दों का तात्पर्य एवं स्वरूप प्रस्तुत करने में की है। इतने पर भी मूल मंतव्य को समझने वाले शास्त्रकारों, वेद मर्मज्ञों की कमी नहीं रही। वे वेदोक्त 'मेध' शब्द का सही अर्थ ही प्रस्तुत करते रहे हैं।

वेदों में हिंसापरक स्वाभाविक रूप से 'मेध' 'बलि' 'आलभन' आदि शब्द बहुतायत से आये हैं। इनमें से प्रत्येक के अनेक अर्थ हैं। उनमें एक अर्थ हिंसा परक भी होता है, किंतु युक्ति संगत अनेक अर्थों की उपेक्षा करके अविवेकपूर्ण एक अर्थ पर ही आग्रह टिका देना किसी भी विचारशील को शोभा नहीं देता। एक-एक शब्द के अर्थ एवं उनके प्रचलित उपयोग पर विचार करने से बात और अधिक स्पष्ट हो जायेगी। मेध-व्याकरण के अनुसार सूत्र है-

"मेधृ-मेधासंगमनयोर्हिंसायां च।"

अर्थात- मेध के तीन अर्थ होते हैं (१) मेधा-बुद्धि का संवर्धन (२) हिंसा (३) संगम, संगतिकरण, एकीकरण-संगठन।

मेध, यज्ञ का भी पर्यायवाची है। यज्ञ के लिए भी इसका प्रयोग होता है। इसीलिए भ्रमवश लोग यज्ञ में हिंसा का औचित्य मानने लगे। किंतु यज्ञ विज्ञान में हिंसा के लिए कोई गुंजाइश नहीं है।

वेद मनीषी पं० दामोदर सातवलेकर ने यजुर्वेद भाष्य (अध्याय ३०) के संदर्भ में मेध शब्द के अर्थ (१) मिलना (२) परस्पर मित्रता करना (३) ऐक्य करना (४) एक दूसरे को जानना (५) जोड़ना (६) प्रेम करना (७) धारणा बुद्धि का बल और तेज बढ़ाना (८) पवित्रता करना (९) सत्त्व-बल और उत्साह बढ़ाना है। धातु पाठ में 'मेधृ' धातु का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा गया है-

"मेधृ-मेधासंगमनयोर्हिंसायां च।"

अर्थात- 'मेध' धातु से निष्पन्न मेध शब्द के मेधा, लोगों में एकता व प्रेम बढ़ाना तथा हिंसा ये तीन अर्थ होते हैं। जब मेध शब्द के अन्य अर्थ होते हैं, तो हिंसा वाले अर्थ के प्रति इतना दुराग्रह क्यों किया जाय, जबकि उन-उन स्थलों में उनका हिंसा से भिन्न तात्पर्य ही अभीष्ट है। ये कुछ दृष्टांत दृष्टव्य हैं-

पुरुष मेध, पुरुषयज्ञ और नृयज्ञ- ये तीनों शब्द प्रायः एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते रहे हैं। इनमें से नृयज्ञ का तात्पर्य बोध कराते हुए मनुस्मृतिकार ने लिखा है-

"नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।"

अर्थात- अतिथियों का स्वागत-सत्कार ही नृयज्ञ है। अजमेध को बकरे की बलियज्ञ से अर्थ लगाने वाले को 'महाभारत' में कड़ी चेतावनी दी गई है-

बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः।
अजसंज्ञानि बीजानिच्छागं नो हन्तुमर्हथ॥ ४॥
नैषधर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः॥

–शांतिपर्व अ० ३३७. ४–५

अर्थात– वेद में अज (बीज) से यज्ञ करना चाहिए। 'अज' (बीज) से यज्ञ करने का अर्थ बकरे का वध करके यज्ञ करने से नहीं लगाना चाहिए। पशुओं का वध करना अच्छे मनुष्यों का धर्म नहीं है। इस तथ्य को स्वीकारते हुए पंचतंत्रकार का मत है–

एतेऽपि ये याज्ञिका यज्ञकर्मणे पशून्
व्यापादयन्ति ते मूर्खाः परमार्थश्रुतेर्न जानन्ति
तत्र किलैतदयुक्तम् अजैर्यज्ञेषु॥
यष्टव्यमिति अजास्तावद् ब्रीह्यःसासवार्षिकाः
कथ्यन्ते न पुनः पशु विशेषाः॥
उक्तं च– वृक्षान् छित्वा पशून्हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्
यद्येवं गम्यते स्वर्गं, नरकं केन गम्यते॥

अर्थात– जो याज्ञिक, यज्ञ में पशुओं की हत्या करते हैं, वे मूर्ख हैं, वे वस्तुतः श्रुति के तात्पर्य को नहीं जानते। वहाँ जो अजों से यज्ञ करना चाहिए, उसमें अज से तात्पर्य व्रीह (पुराना अनाज विशेष) से हैं। आप्त कथन भी है– 'यदि पशुओं की हिंसा करके उनकी रुधिर की धारा बहाकर स्वर्ग में जाया जा सकता है, तो नरक में जाने का मार्ग कौन सा है?

यहाँ थोड़ा विचार आलभन एवं बलि शब्दों पर भी कर लेना उचित होगा। 'आलभन' का अर्थ स्पर्श, प्राप्त करना तथा वध करना होता है। किंतु वैदिक संदर्भ में इसका अर्थ वध के संदर्भ में नहीं किया जाना चाहिए। जैसे–

ब्राह्मणे ब्राह्मणं आलभेत। क्षत्राय राजन्यं आलभेत॥

इसका सीधा सही अर्थ होता है ब्राह्मणत्व के लिए ब्राह्मण को प्राप्त करे, उसकी संगति करे और शौर्य के लिए क्षत्रिय को प्राप्त करे-उसकी संगति करे।

अब यदि आलभेत का अर्थ वध लिया जाय तो बेतुका अर्थ बनता है-ब्राह्मणत्व के लिए ब्राह्मण तथा शौर्य के लिए क्षत्रिय का वध करे। ऐसे अर्थों से बचने के लिए ही कहा गया कि वैदिक संदर्भ में शब्दों के हिंसापरक अर्थ न किए जाएँ।

यजुर्वेद में 'आलभते' शब्द प्रयोग में आया है। उसका अर्थ निकाला गया 'वध' करना चाहिए। जबकि यह अर्थ यहाँ किसी प्रकार युक्ति संगत नहीं। 'आङ्' पूर्वक लभ् धातु से निष्पन्न इस शब्द का अर्थ 'स्पर्श' करना होता है। उदाहरण के लिए-

वत्सस्य समीप आनयनार्थम् आलम्भः स्पर्शो भवतीति।

-सुबोधिनी टीका मीमांसादर्शन-२/३/१७

यहाँ आलभ्य धातु का अर्थ स्पर्श करना ही किया गया है। अतएव यज्ञों में आलभ्य के प्रयोग से हिंसा का अर्थ लेना नितांत भ्रांतिपूर्ण है।

बलि:- इस शब्द का अर्थ भी वध के संदर्भ में निकाला जाने लगा है। वास्तव में सूत्र है- बल=बल्+इन्। इसका अर्थ है (१) आहुति, भेंट, चढ़ावा तथा (२) भोज्य पदार्थ अर्पित करना।

प्राचीन प्रचलन को देखें तो गृहस्थ के नित्यकर्मों में 'बलिवैश्व देवयज्ञ' का भी विधान है। इसमें भोजन का एक अंश निकाल कर उसे अग्नि को अर्पित किया जाता है। कुछ अंश लेकर पशु-पक्षियों एवं कृमियों के लिए भी डाला जाता है। 'बलि' कहलाने वाली इस क्रिया में किसी जीव के वध का तो प्रश्न नहीं उठता, दुर्बल जीवों को पोषण देने का विधान ही है।

उदाहरणार्थ:- मृच्छकटिकम् (महाकवि शूद्रक के नाटक) में एक पात्र आर्य चारुदत्त अपने मित्र से कहते हैं:-

"यासां बलिः सपदि मद्गृहदेहलीनां हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः।

अर्थात- मेरे घर की देहलियों पर समर्पित 'बलि' को हंस एवं सारस आदि पक्षीगण खा जाया करते थे।" स्पष्ट है कि 'बलि' बलिवैश्व के रूप में अर्पित अन्नादि ही है।

बलि का अर्थ 'कर-टैक्स' भी होता है। रघुवंश महाकाव्य में राजा दिलीप की शासन व्यवस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है-

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुंमादत्ते हि रसं रविः॥

अर्थात- वे प्रजा के कल्याण के लिए 'बलि' 'कर' ग्रहण करते थे, उसी प्रकार जैसे सूर्य पानी का शोषण करता है, किंतु उसे हजार गुना करके बरसा देता है।

यहाँ भी बलि का प्रचलित अर्थ किया जाय तो क्या बात बनेगी?

संस्कृत कोष (वामन शिवराम आप्टे कृत) में बलि के अर्थ इस प्रकार हैं-

(१) आहुति, भेंट (२) दैनिक आहार प्रदान करना (३) पूजा-आराधना (४) उच्छिष्ट (५) देवमूर्ति पर चढ़ाया गया नैवेद्य (६) शुल्क, कर, चुंगी (७) चँवर का डंडा (८) राजा 'बलि' (प्रह्लाद के पौत्र)।

श्राद्धकर्म में गोबलि, कुक्कुट बलि, काकबलि, पिपीलिकादि बलि आदि का विधान है। उसमें कोई गौ, कुत्ता, कौआ या चींटी आदि का वध नहीं करता, उनके लिए श्रद्धापूर्वक भोज्यपदार्थ अर्पित किया जाता है।

हिंदू धर्म कोश (डॉ० राजबली पांडेय) में बलि को एक कन्नड़ भाषा का शब्द कहा है। इसे तमिल में 'बरि' तथा तेलुगु में 'बेदगु' कहते हैं। यह एक जाति विशेष के लिए प्रयुक्त संबोधन

है। उस वन्य जाति के लोग किसी पशु-पक्षी, अथवा जलचर का चिह्न धारण किए रहते हैं। यह चिह्न उनके समुदायों की पहचान कराता है। जो समुदाय जिस प्राणी का चिह्न धारण करता है, उसके संरक्षण को अपना विशेष दायित्व मानता हैं। यहाँ भी 'बलि' संबोधन रक्षा करने वालों के लिए प्रयुक्त होता है, वधकर्ता के लिए नहीं।

यज्ञ में पूर्णाहुति के समय देवताओं एवं यज्ञ भगवान को भोज्य पदार्थ भेंट करने का विधान है। उसे 'बलि' ही कहा जाता है। उसमें सात्त्विक भोजन ही दिए जाते हैं। मांसाहार प्रेमियों ने अपनी जिह्वा लोलुपता के कारण सामिष भोजन अर्पित करना प्रारंभ कर दिया होगा और इस प्रकार बलि का हिंसक अर्थ प्रचलित कर दिया गया। किंतु वस्तुतः वैदिकी-यज्ञीय संदर्भ में हिंसक प्रयोग सर्वथा वर्जित माने गये हैं।

यज्ञबलि का सार्थक भाव- देव दक्षिणा

यज्ञ के साथ 'स्वाहा' एवं 'स्वधा' प्रयोगों का निर्देश शास्त्रों ने दिया है। यज्ञ रूप परमात्मा की स्तुति में कहा गया है 'त्वमेकं शरण्यं' (एक मात्र तुम्हीं शरण में जाने योग्य, समर्पण योग्य), 'त्वमेकं वरेण्यं' (तुम ही एक मात्र वरण करने योग्य, धारण करने योग्य) हो। यज्ञाराधना में 'स्वाहा' समर्पित होने की तथा 'स्वधा' स्वयं में धारण करने की विधा रूप है। स्वाहा के तीन अर्थ किये गये हैं-

(१) सुष्ठु आह-सु-आह अर्थात्-सुंदर कथन।

(२) स्व वाक् आह इति-अर्थात्- अपनी वाणी, अपनी सहमति से कहा गया वाक्य।

(३) स्व आहुतं हविर्जुहोति वा-हवि की या अपनी क्षमता-प्रतिभा-भावना की आहुति देना।

स्वाहाकार तो यज्ञ के साथ-साथ चलता ही रहता है। यज्ञ संचालक याजकों की भावनाओं को उक्त नियमों के अनुकूल बनाये रखते हैं। किंतु इतने मात्र से यज्ञ को पूरा नहीं माना जाता। उसके साथ स्वधा प्रयोग किया जाता है, तभी यज्ञ की पूर्णता मानी जाती है।

स्वधा के भी तीन प्रकार के अर्थ किये गये हैं-

(१) अपना निजी स्वभाव या निश्चय-संकल्प धारण करना।

(२) स्वादपूर्वक-रुचिपूर्वक-प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करने की क्रिया।

(३) पितरों के निमित्त दी गयी भेंट-आहुति पितृकर्म में 'स्वधा नमः' वाक्य का प्रयोग बहुत होता है। इसका भाव है, कि पितृगण प्रसन्नतापूर्वक यह ग्रहण करें और तृप्त हों।

यज्ञ में यज्ञ भगवान को तृप्त करने, आहूत देवताओं को तुष्ट करने, यज्ञ में सहयोगी विशेषज्ञों को संतुष्ट करने का निर्देश है। इसके बिना यज्ञ को पूरा हुआ नहीं माना जाता। यह यज्ञ का स्वधा प्रयोग कहा जाता है। इस प्रसंग में यज्ञ-बलि, एवं देवदक्षिणा प्रक्रिया की जाती है।

बलि के संदर्भ में पूर्व में ही स्पष्ट किया जा चुका है कि यज्ञ प्रयोजनों में उसका अर्थ हिंसापरक नहीं कहा जा सकता। श्रद्धापूर्वक भोज्य पदार्थ-अन्नादि अर्पित करने को ही कर्मकांड में बलि कहा जाता है। श्राद्धकर्म में देवबलि, गौबलि, काकबलि आदि एवं बलिवैश्वदेव का उल्लेख करके यह बात समझायी जा चुकी है।

अस्तु यज्ञ में यज्ञ पुरुष तथा आहूत सभी देव शक्तियों को भोजन अर्पित करके तृप्त किया जाता है, उसे बलि कहा जाता है। कार्य समाप्त होने पर भी श्रद्धा की अभिव्यक्ति करने से देव शक्तियाँ तुष्ट होती है। यज्ञ मीमांसा में स्पष्ट लिखा हुआ है-

बलिस्तु त्रिविधो ज्ञेयस्तान्त्रिकः स्मार्त एव च।
वैदिकश्चेति.................. ॥
वैदिकं तु बलिं दद्यादोदनं स्विन्नमाषवत्।
सरोचनमतिक्रूर दैवते वटकान्वितम्॥

अर्थात- बलि तीन प्रकार की होती है- तांत्रिक, स्मार्त्त और वैदिक। पकाये हुए माष अर्थात्- उड़द से युक्त ओदन (भात), वैदिक बलि कही जाती है। अतिक्रूर देवता के लिए सिंदूर और वटक (बड़ा) से युक्त ओदन की बलि देनी चाहिए।

स्पष्ट है कि आहार रूप में देवताओं को शुद्ध सात्त्विक पदार्थ ही प्रिय हैं, किंतु देवताओं को भोजन भेंट करके तृप्त करना भी प्रतीकात्मक ही है। पदार्थ तो सारे उन्हींने हमें दिये हैं, उन्हें कमी किस बात की? किंतु उनके दिए में से उनके निमित्त अंश निकालकर अपनी कृतज्ञता व्यक्त की जाती है। अर्पित सामग्री अपने लिए

प्रयुक्त न करके परमार्थ भाव से वितरित कर दी जाती है। इस परमार्थवृत्ति युक्त कृत्य से देवता निश्चित रूप से बहुत तुष्ट होते हैं।

देवताओं को प्रसन्न करने, तुष्ट करने के लिए देव दक्षिणा का विधान कहा गया है। देवता तब तुष्ट होते हैं, जब वे देखते हैं कि आवाहनकर्ता की श्रद्धा वास्तविक है। वास्तविक श्रद्धा में सम्मान के साथ अनुगमन की वृत्ति भी होती है। गीता का कथन है-

यो यच्छ्रद्धः स एव सः।

अर्थात- 'जो जैसी श्रद्धा रखता है,वस्तुतः वह वैसा ही है।' श्रद्धास्पद के अनुरूप बन जाना ही श्रद्धा की सच्चाई का प्रमाण है। देवताओं को अपनी श्रद्धा की सत्यता का प्रमाण देकर ही वास्तव में तुष्ट किया जा सकता है। अस्तु, उनको दक्षिणा रूप में ऐसे संकल्प-ऐसे व्रत देने चाहिए, जिससे अपने अंदर देवत्व का विकास हो।

देवत्व के विकास के दो क्रम हैं (१) देवों के प्रतिकूल दुष्प्रवृत्तियों, विकारों को घटाना तथा (२) देवों के अनुकूल सत्प्रवृत्तियों-सत्कर्मों को जीवन में बढ़ाना। सामान्य रूप से प्रत्येक विचारशील व्यक्ति अपने अंदर से विकारों को हटाने तथा सुसंस्कारों को अपनाने के बारे में सोचता, प्रयास करता है। किंतु आज के युग में अयज्ञीय प्रवृत्तियों का इतना जोर है कि सामान्य संकल्प तो उनके आगे टिक ही नहीं पाते। इसीलिए यज्ञीय वातावरण में देवशक्तियों के संरक्षण में आत्मपरिष्कार-आत्मनिर्माण-आत्म विकास के संकल्प करना चाहिए, न कि मूक एवं निरीह प्रणियों का बध करके पाप का भागीदार बनना चाहिए।

यह अंधविश्वासी प्रथा बंद होनी ही चाहिए

कहा जा चुका है कि बलिदान के नाम पर देवी-देवताओं के सम्मुख बकरा, भैंसा, सुअर, मुर्गी आदि जीवों का काटा जाना पशुओं पर महान अत्याचार है। यह एक बड़े आश्चर्य की बात है कि हिंदू धर्म में एक तरफ तो वेदों, उपनिषदों, दर्शनों, गीता आदि का सर्वोच्च तत्त्वज्ञान पाया जाता है, जिसे प्राप्त करके समस्त तत्त्वज्ञानी मुग्ध हो जाते हैं और दूसरी तरफ अपने कल्याण के निमित्त देव मूर्तियों के सम्मुख निरपराध पशुओं की गर्दन पर छुरी चलाना, यह तो स्पष्ट कसाईपन है। यदि ऐसे ही कामों से पुण्य होता और उसके फलस्वरूप स्वर्ग प्राप्ति हो सकती, तो कसाई, व्याध, मछुआरे आदि स्वर्ग पहुँच जाते। फिर दान, पुण्य, हवन आदि कार्यों के करने की क्या आवश्यकता थी? जानबूझकर किसी जीव को मारना अथवा उसे अकारण ही कष्ट पहुँचाना, किसी मजहब में अच्छा नहीं बताया गया है और न किसी सत्पुरुष ने उसका समर्थन किया है। यों देश-काल की विवशता के कारण कभी-कभी किन्हीं व्यक्ति या समाज को मांस आदि का उपयोग करना ही पड़े तो और बात है, उसे लाचारी समझकर क्षमा भी किया जा सकता है। पर इस प्रकार बिना उद्देश्य या आवश्यकता के असंख्यों छोटे-बड़े पशुओं को देवताओं के नाम पर काट डालना तो प्रथम श्रेणी की मूर्खता और एक महापाप है।

वैसे कहने के लिये तो बलिदान का उद्देश्य संतान, धन, स्वास्थ्य या किसी अन्य प्रकार का लाभ प्राप्ति होता है, पर इससे

कर्ता की मूढ़ता ही प्रकट होती है। इस प्रकार के अंधविश्वास जंगली और असभ्य जातियों में ही पाये जाते हैं। वे क्रूर देवताओं के सम्मुख पशु-पक्षियों को ही नहीं, मनुष्य तक का बलिदान कर डालते हैं। पर वेद-शास्त्रों के, महान अध्यात्म ज्ञान के अधिकारी भारतवासी भी यदि उनका ही अनुकरण करें तो यह एक खेद और निंदा की बात की समझी जायगी। हमारे धर्मग्रंथों में "वसुधैव कुटुम्बकम्" के महान सिद्धांत की घोषणा की गई है और मनुष्य को आदेश दिया गया है कि वह इन प्राणियों के प्रति सदैव दया और करुणा का व्यवहार करे। संसार के सभी संत और साधु पुरुषों ने भी अपने अनुयाइयों को यही अपदेश दिया है कि सभी जीव-जंतुओं पर दया रखी जाय और निरर्थक कभी किसी को कष्ट न पहुँचाया जाय।

तत्त्ववेत्ता ऋषि-मनीषी जानते थे कि पशुओं तथा अन्य प्राणियों के साथ क्रूरता और निर्दयता का व्यवहार करने से मनुष्य का हृदय कठोर बनता है और उसकी कोमल वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वह अन्य मनुष्यों के साथ भी अमानुषिकता का व्यवहार करने में संकोच नहीं करता। इस संबंध में एक विद्वान ने लिखा है कि "जो व्यक्ति प्राणियों के साथ दया का व्यवहार करता है, वही अन्य मनुष्यों पर दया कर सकता है।" दुनिया में सब मनुष्य एक से स्वभाव के नहीं होते। जिस प्रकार मनुष्यों के शरीर में हमको अंतर जान पड़ता है, वैसा ही उनके स्वभाव और विचारों में भी फर्क रहता है। ऐसे कोई दो मनुष्य नहीं मिल सकते, जो सब विषयों में बिल्कुल एक से विचार रखते हों। कुछ लोग तो इस प्रकार के आपसी मत-भेद को प्रकृति का स्वाभाविक नियम समझ कर उसे अधिक महत्त्व नहीं देते, अथवा शांतिपूर्वक आपस में किसी प्रकार का समझौता कर लेते हैं। पर अन्य लोग ऐसे भी होते हैं जो जरा से मत-भेद को हठ और क्रोध

का समावेश करके बढ़ाते चले जाते हैं और अंत में छुरी-तलवार, बंदूक से उसका फैसला करने को तैयार हो जाते हैं। यह सब हार्दिक भावों और बाल्यावस्था से हृदय-पटल पर जमी हुई क्रूरता की प्रवृत्तियों का ही परिणाम होता है। यदि हम इस संसार को वास्तव में प्रभु का एक बगीचा बनाना चाहते हैं, जिसमें सर्वत्र उपयोगी फल-फूल उत्पन्न हो रहे हों, सुंदर पक्षी अपने मनमोहक शब्दों से श्रोताओं के चित्त को प्रफुल्लित कर रहे हों, प्रत्येक को अनायास ही मधुर फल और शीतल जल उपलब्ध हो सके, तो हमको मानव जाति की मानसिक वृत्तियों में परिवर्तन करके उनमें दया, करुणा, पारस्परिक स्नेह, सौजन्य भावों का उद्रेक करना होगा। इस संबंध में अमेरिका के एक प्रचारक श्री ऐंजल का कथन है-

"गरीब और अनबोल प्राणियों के वकील की हैसियत से मैं आपको यह बतलाना चाहता हूँ कि जितनी शीघ्रता से हमारी समस्त शिक्षण संस्थाओं में जीवदया और समस्त प्राणियों के प्रति सहानुभूति के गीत, कविता, साहित्य का प्रचार बढ़ाया जायेगा, उतने ही अंशों में इस नाशकारी हिंसा की भावना की जड़ कटेगी। इतना ही नहीं, वरन् सब प्रकार के अपराधों का मूल नष्ट होगा। कुकृत्य के बदले सजा देने, जेल में बंद करने से जहाँ कि एक अपराध को रोका जा सकता है, वहीं मीठे शब्दों से , दया की भावना जागरित करने से हजारों दुष्ट कार्यों को मिटाया जा सकता है।"

आत्मा की अमरता का सिद्धांत

पशु, पक्षियों की हत्या, बलि आदि से बचने और उनके साथ सद्व्यवहार करने का एक बड़ा आधार आत्मा की अमरता का सिद्धांत है। जिसे हिंदू धर्म की आधारशिला कह सकते हैं। कोई भी सच्चा आस्तिक चाहे वह पढ़ा-लिखा हो और चाहे उसकी अक्षरों से कभी भेंट भी न हुई हो, इस तथ्य को कदापि अस्वीकार नहीं कर सकता कि चींटी से लेकर हाथी तक प्राणी मात्र में एक ही आत्म तत्त्व का प्रकाश हो रहा है। पशु-पक्षियों में भी प्रेम भावना और अपने साथ भलाई करने वाले के प्रति कृतज्ञता का गुण बहुत बड़ी मात्रा में पाया जाता है। प्राचीन और नवीन साहित्य में हाथी, घोड़ों, कुत्तों आदि की वफादारी और सेवा भावना के ऐसे हजारों सच्चे उदाहरण मिलते हैं। हाथियों की बुद्धिमानी की अनेक घटनाएँ प्रसिद्ध हैं और जो उनके साथ प्रेम का व्यवहार करता है, उसे वे बरसों तक याद रखते हैं और अवसर आने पर उसकी उदारता का बदला चुकाते हैं। घोड़ों ने अनेक बार युद्ध में अपने प्राणों का मोह त्याग कर स्वामी की प्राण-रक्षा की है। महाराणा प्रताप के चेतक घोड़े की कथा इतिहास के पन्नों पर अंकित है और झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई के घोड़े ने भी युद्ध-सेना में स्मरणीय वीरता प्रदर्शित करके घायल रानी को युद्ध क्षेत्र से बाहर पहुँचा दिया था। कुत्तों की स्वामिभक्ति और अपने स्वामी, मालिक की आज्ञापालन की तत्परता हम प्रायः देखते ही रहते हैं। इंग्लैंड में एक कुत्ते ने दीन-दुःखियों की सहायता करने वाली संस्थाओं के लिये लाखों रुपये चंदा

इकट्ठा करके दिया था। इसी प्रकार स्विट्जरलैंड के सेंट बर्नार्ड ईसाई गिरजाघर के 'बेरी' नामक कुत्ते ने अपने जीवन में चालीस व्यक्तियों की प्राण रक्षा की थी। वहाँ पर उस कुत्ते का एक स्मरण चिह्न स्थापित किया गया है। गायें भी अपने पालने वाले परिवार के व्यक्तियों से कैसी हिल-मिल जाती हैं और घर के एक व्यक्ति की तरह ही जीवन व्यतीत कर देती हैं, इसके उदाहरण भी प्रत्येक स्थान में मिल सकते हैं।

पशुओं के साथ इस प्रकार आत्मीयता का संबंध रखते हुए यदि उनके मारने का विचार मन में लाया जाय अथवा उन्हें जानबूझ कर कष्ट पहुँचाया जाय, तो यह मनुष्य के लिये एक कलंक की बात ही होगी। धार्मिक दृष्टि से तो किसी भी प्राणी को अकारण कष्ट देना या उसका प्राणनाश करना एक बड़ा पाप है और उसका प्रतिफल इस जन्म या आगामी जन्म में मिलता ही है। किसी को दुःखी करने से सबसे पहले तो अपनी आत्मा ही निर्बल और व्याकुल होती है और फिर उससे जो संस्कार हमारे अंतर्मन पर पड़ते हैं, वे आजीवन हमारे साथ रहते हैं और अंतकाल में भी उनका स्मरण हमें अधोगति की तरफ प्रेरित करता है।

इसलिए हमारा कर्तव्य है कि हम पशुओं से भी प्रिय और आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करें और मीठे शब्दों में ही कुछ कहें। जैसा कुछ लोग सोचते होंगे, यह कोई हँसी की बात नहीं है, वरन् सचमुच अनेक पशु-पक्षी ऐसे भावनाशील होते हैं कि उन पर हमारी सद्भावनाओं का प्रभाव मनुष्यों की अपेक्षा भी अधिक पड़ता है। चाहे घोड़ा हमारे शब्दों का अर्थ ठीक-ठीक न समझे, पर भाव को वह तुरंत हृदयंगम कर लेता है। रूस के जगत् प्रसिद्ध संत टाल्सटाय घोड़ा गाड़ी में चलते समय अपने घोड़ों को कभी चाबुक नहीं मारते थे। जब उनसे इसका कारण पूछा गया तो उन्होंने

कहा कि "मैं तो अपने घोड़े के साथ बात करता हूँ, उसको मैं मार कैसे सकता हूँ?"

धर्म-शास्त्रों का आदेश

हिंदू धर्मशास्त्रों में तो परोपकार, परदुःखकातरता, दया, करुणा आदि गुणों को ही मनुष्य का भूषण और मोक्ष का प्रदाता बतलाया है। उनमें "**परोपकाराय सतां विभूतयः**"- "**अहिंसा परमो धर्मः**"- "**प्राणिनामार्तिनाशनम्**"- "**पापाय परपीडनम्**", "**सर्वभूतहिते रताः**" आदि जैसे वाक्य भरे पड़े हैं। मानव-जीवन का सबसे बड़ा लाभ यही बतलाया है कि वह अन्य प्राणियों के दुःख, कष्ट, अभावों को दूर करने में प्रयुक्त हो सके। प्राणीवध, जीवहिंसा, किसी को कष्ट पहुँचाना आदि बातों की सर्वथा निंदा की गई है।

धर्म की व्याख्या और सदाचार की शिक्षा की दृष्टि से महाभारत सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। उसमें धर्म के सत्य सिद्धांत जगह-जगह भरे पड़े हैं। उसमें धर्म के मर्म को जानने वाले महात्मा भीष्म ने मांस, मदिरा आदि निकृष्ट पदार्थों का निषेध करते हुए कहा है कि "यज्ञों में मांस, मदिरा, सुरा आदि का व्यवहार धूर्तों ने प्रचलित किया है। वेदों में कहीं इसका उल्लेख नहीं है। अहंभाव, मोह और जिह्वा की लोलुपता के कारण ही इनका प्रचार किया गया है। अन्यथा सच्चे ब्राह्मण सब प्रकार के यज्ञों में उसी कण-कण में व्याप्त प्रभु का भजन दूध, पुष्प आदि के द्वारा करते हैं और वैदिक नियम के अनुसार हवन में वृक्षों की

समिधाओं का ही उपयोग करते हैं। जो व्यक्ति इसके विपरीत यज्ञों में हिंसा का विधान बतलाते हैं, उनको धर्म निंदक, अज्ञानी और संशयात्मा ही समझना चाहिए। धर्म का उपदेश करने वाले मनु भगवान ने भी अहिंसा को ही सब कर्मों में श्रेष्ठ बतलाया है। सज्जन व्यक्तियों का कर्तव्य है कि इस उपदेश को शिरोधार्य कर अहिंसा धर्म का पालन करें। जो लोग इसके विरुद्ध आचरण करते हुए यज्ञों के नाम पर पशुहिंसा करके मांस का सेवन करते हैं, उनको कदापि धर्मात्मा नहीं कहा जा सकता, वे पापी ही कहे जायेंगे।''

देवी-देवताओं को बदनाम करने वाले

धर्मशास्त्रों के प्रमाणों को छोड़कर भी यदि हम अपनी सामान्य बुद्धि से इस विषय पर विचार करें, तो पशुओं की इस तरह हत्या करने का कभी समर्थन नहीं कर सकते। यद्यपि पशुओं को किसी प्रकार का ज्ञान या विवेक नहीं होता, तो भी प्राकृतिक प्रेरणा से उनको भी अपने प्राणों का मोह अवश्य होता है। इसलिए जब उनके प्राणों पर कोई संकट आता है, तब वे भयभीत और व्याकुल होकर जान बचाने के लिये इधर-उधर भागने लगते हैं, डरकर चिल्लाने-पुकारने लगते हैं। ऐसे निरपराध जीवों को जो लोग घेर-बाँधकर बलपूर्वक काट डालते हैं, उनका कार्य निश्चय ही घोर पाप माना जायगा। इसीलिए कसाई का पेशा सब कोई निंदनीय बतलाते हैं और किसी को कसाई कह देना एक तरह की गाली समझी जाती है।

जब सामान्य रूप से मांस खाने के लिए पशुओं का मारना बुरा समझा जाता है, तो देवी-देवताओं के सामने पशुओं की गरदन काटना उससे कहीं अधिक बुरा और गर्हित कर्म कहा जायगा। जब हम देवताओं को परमात्मा का विशेष अंश और मनुष्यों के लिए कल्याणकारी बतलाते हैं, तो फिर यह कैसे सम्भव हो सकता है कि वे सीधे-साधे पशु-पक्षियों के रक्त और मांस से प्रसन्न हो सकें? ऐसे देवताओं की कल्पना और मान्यता

राक्षसी स्वभाव के मनुष्य ही कर सकते हैं। सभ्य और शिक्षित लोग तो ऐसे कार्य को घृणा और विरक्ति के भाव से ही देखेंगे। उन धार्मिक स्थानों में जहाँ मनुष्य प्रभु का दर्शन करके कुछ आत्मिक लाभ प्राप्त करने की भावना से जाता है, इस प्रकार वीभत्स दृश्य उपस्थित करने वाला व्यक्ति धार्मिक किस प्रकार कहा जा सकता है? यदि ऐसा कुकृत्य करने वाले व्यक्ति को भगवान धन, संतान, सुख, सौभाग्य का उपहार देने लगेंगे तो फिर वे नरक में किसको भेजेंगे?

अन्य मतावलंबियों द्वारा जीव हिंसा का निषेध

इस प्रकार की जीव-हिंसा की निंदा भारतीय विद्वानों ने ही नहीं की है, वरन् संसार के सभी धर्माचार्यों तथा संतपुरुषों ने उसे बुरा बताया है। भले ही आजकल के मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी आदि जातियाँ परंपरागत अभ्यास के कारण आमतौर से मांस, चमड़े आदि व्यवहार करते हों, पर उनके धर्मग्रंथों में तथा महापुरुषों के उद्‌गारों में जीव हिंसा का निषेध पाया जाता है।

ईसामसीह अपनी क्षमा और करुणा के लिये प्रसिद्ध हैं। वे सदा यही कहा करते थे कि मैं दुःखियों के दुःख दूर करने आया हूँ। उन्होंने कहीं भी पशु-पक्षियों के बलिदान की बात नहीं कही है। इसके विपरीत उन्होंने ईश्वरीय विधान का वर्णन करते हुए कहा है- "मैं न तो तेरे यहाँ से बैल और न तेरी पशुशाला से बकरे लूँगा, क्योंकि जंगल व पहाड़ के सब पशु-पक्षी मेरे ही हैं। क्या मैं बकरे का खून पियूँ और बैल का मांस खाऊँ! मुझ परमेश्वर को तो धन्यवाद रूपी बलि चाहिए।" बाइबिल में ही एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि "जंगल की सब वस्तुओं का तुझे ज्ञान हो, पर तेरे हृदय में दया न हो, तो परमेश्वर के सन्मुख वह ज्ञान किसी काम न आवेगा।" ईसाई धर्म में जगह-जगह सब प्रणियों की रक्षा और उनके साथ मेरहबानी का बर्ताव करने का उपदेश पाया जाता है। स्वयं ईसामसीह तथा

उनके सब अनुयायी संत-पुरुष पशु हिंसा से पृथक रहकर दूध, रोटी, खजूर, अंजीर आदि से उदरपोषण किया करते थे। बाइबिल में गाय, बैल आदि की हत्या को भी मनुष्य की हत्या की तरह बुरा बतलाया गया है। बाइबिल में ही एक स्थान पर आया है- 'ऐ देखने वाले! देखता क्या है? काटे जाने वाले जानवरों के (कष्टों के) लिए अपनी जबान खोल।' इस मंत्र का उद्देश्य यह है कि भले आदमी पशु हत्या को चुपचाप सहन न करें, वरन् इन निरीह प्राणियों के कष्ट मिटाने के लिए मांसाहार के विरूद्ध आंदोलन करें। महात्मा ईसा ने स्पष्ट कहा है- "तू किसी को मत मार। तू मेरे समीप मनुष्य बन कर रह। प्राणियों की हत्या मत कर। उनका मांस न खा।"

यहूदी तथा पारसी धर्म बड़े पुराने हैं। यद्यपि तत्कालीन परिस्थितियों के कारण वे अन्न और वनस्पतियों की कमी के कारण मांस का भी प्रयोग करते थे, पर उन्होंने धर्म की दृष्टि से पशु हिंसा को अनुचित ही बतलाया है। यहूदी धर्म ग्रंथ का वचन है कि "बकरों और बछड़ों" के रक्त से नहीं, वरन् अपने ही परिश्रम व त्याग से स्वर्ग और मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है। यह कभी संभव नहीं कि बैल व बकरियों का खून तुम्हारे पापों के धब्बों को छुड़ा सके। इसी प्रकार पारसी धर्म में कहा गया है कि "ऐ पवित्र मनुष्य! प्रभु की आज्ञा है कि पृथ्वी को खून, मैल और मांस से अपवित्र मत बनाओ। जो दूसरों को पशुओं को मारने की प्रेरणा देते हैं, अहुरमज्द (परमात्मा) उनको बुरा समझते हैं।"

कुरान में लिखा है कि- "हरा पेड़ काटने वाले, मनुष्यों की खरीद-फरोख्त करने वाले, जानवरों को मारने वाले तथा परस्त्रीगामी को खुदा माफ नहीं करता सकता। खुदा उसी पर रहम करता है जो उसके बनाये जानवरों पर दया दिखाता है। "

यद्यपि मुसलमानों में मांस का प्रचार अधिक है और निर्दयता की भावना भी अधिक प्रकट होती है, तो भी उनके प्रमुख धर्म-वाक्य (कलमा) में कहा गया है कि "परमात्मा का आदेश है कि तुम सब जीवों पर दया करो।" इसी प्रकार कुरान के प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में "अर्रहमान-अर्रहीम" शब्द दिये गये हैं जिनका अर्थ है कि "परमात्मा इस संसार को बनाते समय दयालु थे और अब भी मनुष्यों के कर्मों पर विचार करते समय दयालु हैं।" उनके सर्वप्रधान तीर्थ मक्का की यात्रा के अवसर पर किसी प्रकार की जीव हिंसा का सर्वथा निषेध है। इस्लाम के सर्वप्रथम नेता हजरत अली का उपदेश था कि "तू अपने पेट को पशु-पक्षियों की कब्र मत बना।" महान बादशाह अकबर भी कहा करता था कि "मैं अपने पेट को दूसरे जीवों का कब्रिस्तान बनाना नहीं चाहता।"

दार्शनिक पैथागोरस ने एक स्थान पर कहा है- "ऐ मौत के जबड़ों में उलझे हुए इनसान! अपनी तश्तरियों को मांस से सजाने के लिए जीवों की हत्या करना छोड़ दे। जो भोले-भाले पशुओं की गरदन पर छुरी चलवाता है, उनका करुण क्रंदन सुनता है, जो अपने हाथों पाले हुए पशु-पक्षियों की ही हत्या करके अपनी मौज मनाता है, उसे अत्यंत तुच्छ स्तर का व्यक्ति समझना चाहिए। जो पशुओं का मांस खा सकता है, वह किसी दिन मनुष्यों का भी खून पी सकता है। " बौद्ध धर्म , जैन धर्म में अहिंसा का प्रबल प्रतिपादन किया गया है। भगवान बुद्ध और भगवान महावीर का दृष्टिकोण प्राणिमात्र के प्रति दया, करुणा, मैत्री और आत्मीयता का व्यवहार करने का था। मांसाहार को उन्होंने अत्यंत घृणित पैशाचिक कृत्य बताया है। मानवता का यही तकाजा है कि हम पशु-पक्षियों से प्यार करें- उनके साथ वैसा ही मधुर व्यवहार करें, जैसा बड़े भाई छोटे भाई के साथ करते हैं।

भगवान ने मनुष्य को अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक बुद्धि देकर सृष्टि का मुकुटमणि बनाया है। साथ ही यह जिम्मेदारी भी सौंपी है कि उस बुद्धि का उपयोग सृष्टि के अन्य प्राणियों की सुख-सुविधा के लिए करे। केवल अपने शरीर, कुटुंब, देश या मानव प्राणी तक ही उसके कर्तव्य सीमित नहीं है, वरन् सारी वसुधा ही उसका कुटुंब है। जैसा कुटुंब का गृह संचालक अपने परिवार के छोटे से छोटे बालकों की सुख-सुविधा का ध्यान रखता है, उसी प्रकार मनुष्य का भी यह नियत कर्तव्य है कि वह अन्य प्राणियों को भी अपना छोटा भाई और पुत्र तुल्य मानकर उनकी सुख-सुविधा का ध्यान रखे। सभी धर्म ग्रंथों में इस 'वसुधैव कुटुंबकम्' सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया है। सभी ऋषियों, संतों और महापुरुषों ने इस आदर्श का प्रतिपादन किया है कि सृष्टि के अन्य प्राणियों को सताया न जाय, वरन् उनके साथ सहानुभूति पूर्ण सद्व्यवहार किया जाय। भगवान महावीर का अवतार तो इस मानवता के प्रधान आदर्श का प्रतिपादन करने के लिए ही हुआ था। उन्होंने पानी और वायु में रहने वाले सूक्ष्म जंतुओं तक पर दया करने और उन्हें कष्ट न पहुँचाने का, चींटी तक को न सताने का व्रत लेने को जन समाज को प्रशिक्षित किया था। सभी सच्चे महापुरुषों की यही मान्यता और शिक्षा रही है।

यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि सत्कर्म से ही सुख मिलता है और दुष्कर्म करने वाले दंड, हानि, नरक और दुर्गति के भागी बनते हैं। भगवान के इस अमिट विधान में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। निरपराध पशुओं की हत्या जैसा क्रूर कर्म करके यदि कोई चाहता है कि उसे धन, संतान, विजय या सफलता मिले, तो वह उतने ही अंधेरे में है जितना कि बिष पीकर दीर्घ जीवन की आशा करने वाला। दुष्ट कर्म का फल केवल दुःख ही हो सकता है। निर्दोष-निरीह प्राणियों की हत्या सर्वमान्य पाप है। इस पाप के

बदले में जो लोग सुख चाहते हैं, धन-संतान का वरदान मिलने की आशा करते हैं, निश्चय ही वे भारी भ्रम और अज्ञान में डूबे हुए हैं। औंधे मार्ग को अपना कर न तो कोई आज तक सुख-शांति प्राप्त कर सका है, और न आगे प्राप्त कर सकेगा। इस भ्रम और अज्ञान का जितनी जल्दी परित्याग किया जा सके उतना ही कल्याण है।

यह बात भली प्रकार समझ लेनी चाहिए कि किसी जीव को सताकर, उसका प्राण लेकर किसी भी प्रकार अपना भला नहीं हो सकता। भगवान का यह अटल नियम कभी टल नहीं सकता कि "पाप करने वाले को दु:ख और दंड मिलता है।" मांस खाने के लिये किसी जीव को मारना पाप है। पर हिंदू धर्म को कलंकित करने एवं देवी-देवताओं को आसुरी अभिरूचि का सिद्ध करने के लिये पशु-बलि देना तो दूना पाप है। इसका दंड भी दूना मिलता है। जो लोग किसी की हत्या करके अपने लिए धन, पुत्र, स्वास्थ्य आदि की आशा करते हैं, उन्हें यह वस्तु तो तभी मिल सकती है जब भगवान का सारा विधान ही उलट जाय और पाप करने से सुख-शांति मिलना आरम्भ हो जाय। ऐसा कभी नहीं हो सकता। इसलिये यह भी निश्चित है कि बलि चढ़ाने वालों पर उलटा दैवी कोप बरसता है और वे पहले से भी अधिक दुख:-दारिद्र्य में फँस जाते हैं। जिस प्रकार उनने किसी जीव को रूलाया, दुख: दिया, उसी प्रकार ईश्वर उन्हें रुलाता है और नारकीय यंत्रणाओं से पीड़ित करता है। "जैसी करनी वैसी भरनी" के अटल सिद्धांत को कोई नहीं मेट सकता। पशुबलि देने वाले इस अटल सिद्धांत के प्रतिकूल फल की आशा करते हैं, तो वे भारी अज्ञान और भ्रम में हैं। उनके मनोरथ कभी सफल नहीं हो सकते।

वस्तुत: यही ध्रुव सत्य है। किसी को चाहे धर्म के नाम पर सताया जाय या स्वार्थ के नाम पर पीड़ित किया जाय, अन्याय का

फल हर किसी को भोगना ही पड़ता है। पशु-बलि करने वाले अपने मन को यह धोखा भले ही देते रहें कि हमने यह कार्य देवता की प्रसन्नता के लिए किया है और वह देवता हमें इस पाप कर्म के दंड से बचा लेगा, पर ऐसा कभी नहीं हो सकता। कोई सच्चा देवता पशु-बलि से कदापि प्रसन्न नहीं हो सकता और न ऐसा पापकर्म करने वाले को दंड से बचा सकता है।

अन्याय करना पाप है, साथ ही अन्याय सहना भी। जो अपने ऊपर होने वाले अत्याचार का प्रतिकार करने में समर्थ नहीं, उनका पक्ष लेना, उन्हें अन्याय से बचाना उन समस्त विवेकशील और धर्मभावना से युक्त मनुष्यों का कर्तव्य है, जो मानवता के कर्तव्य पालन में विश्वास करते हैं। बेचारे पशु अपनी गरदन पर चुपचाप छुरी चलवा लेते हैं, उनमें इतना बुद्धि बल नहीं है कि इन अत्याचारियों से बदला ले सकें या उनके विरुद्ध आवाज उठाकर न्याय प्राप्त कर सकें। इस प्रकार बेकसों का हिमायती बनने की जिम्मेदारी प्रत्येक मानवता पर विश्वास करने वाले की है।

इस विपन्न स्थिति को आखिर कब तक चलने दिया जाय? यह विचारणीय प्रश्न है। पिछले कुछ दिनों से हिंदू धर्म की महानता को कलंकित करने वाली यह बातें अपनी जड़ें जमाये बैठी हैं। क्या आगे भी इनको ऐसे ही रूप में बैठे रहने दिया जाय? आत्म-संशोधन और भविष्य निर्माण के लिए जब प्रयत्न चल रहा है, तो यह भी उचित एवं आवश्यक है कि पशुबलि जैसी कलंकी कुप्रथाओं का उन्मूलन किया जाय।

पशुबलि कुछ लोग करें और शेष लोग चुपचाप देखें, उसके विरुद्ध न कुछ कहें न कुछ करें, यह सब प्रकार अशोभनीय है। भगवान ने वाणी और शक्ति, दया और करुणा इसलिए दी है कि उसका उपयोग अन्याय को रोकने, अधर्म का प्रतिकार करने और दुर्बलों का पक्ष लेने में व्यय करें। पशुबलि एक ऐसा ही अन्याय है

जो धर्म को तो कलंकित करता ही है, साथ ही असहाय जीवों पर अत्याचार भी है, इस अन्याय को रोकने के लिये प्रयत्न करना हम सभी का धर्म-कर्तव्य है। इस धर्म कर्तव्य को पालन करते हुए पशुबलि को रोकने के लिए उपयुक्त वातावरण बनावें, जो लोग इस कुप्रथा पर विश्वास करते हैं, उन्हें समझाकर धर्म मार्ग पर लावें और जहाँ संभव हो वहाँ इस कुप्रथा के विरुद्ध सत्याग्रह, जन आंदोलन आदि का भी आयोजन करें। इन उपायों द्वारा पशुबलि रोकी जा सकती है और उसके लिए प्रयत्न करने वाले भारी पुण्य के भागी बन सकते हैं।

पशुबलि भारी भ्रम है, भारी पाप है। जिसका फल दुःख और दंड के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। इससे स्वयं बचने का और दूसरों को बचाने का प्रयत्न करना प्रत्येक विचारशील एवं मानवतावादी धर्म प्रेमी का परम कर्तव्य है।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा

: युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य- संक्षिप्त परिचय :

ज्यादा जानकारी यहाँ से प्राप्त करें : http://hindi.awgp.org/about_us

- **विचारक्रान्ति अभियान के प्रणेता** : विचारों को परिस्कृत और ऊँचा उथाने मे समर्थ 3000 से भी अधिक पुस्तकों के लेखन के माध्यम से विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान की शरुआत की ।
- **वेद, पुराण, उपनिषद के प्रसिद्ध भाष्यकार** : जिन्हों ने चारों वेद, 108 उपनिषद, षड दर्शन, 20 स्मृतियाँ एवं 18 पुराणों का युगानुकूल भाष्य किया, साथ ही 19 वाँ प्रज्ञा पुराण की रचना भी की ।
- **3000 से अधिक पुस्तकों के लेखक** : मनुष्य को देवता समान, घर-परिवार को स्वर्ग, समाज को सभ्य और समग्र विश्वराष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने मे समर्थ हजारों पुस्तकें लिखकर समयानुकूल समर्थ मार्गदर्शन प्रदान किया ।
- **युग-निर्माण योजना के सूत्रधार** : जिन्होंने शतसूत्री युग निर्माण योजना बनाकर नये युग की आधार शिला रखी ।
- **वैज्ञानिक-अध्यात्मवाद के प्रणेता** : जिन्हों ने धर्म और विज्ञान के समन्वय की प्रथम प्रयोगशाला 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' स्थापित कर सिद्ध किया कि "धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं, पुरक है "।
- **'२१ वीं सदी : उज्वल भविष्य' के उद्घोषक** : जिन्हों ने '२१ वीं सदी : उज्वल भविष्य' का नारा दिया तथा युग विभीषिकाओं से भयग्रस्त मनुष्यता को नये युग के आगमन का संदेश दिया ।
- **स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनानी** : जिन्हों ने महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी "श्रीराम मत्त" के रुप में प्रख्यात हुए ।
- **गायत्री के सिद्ध साधक** : जिन्हों ने गायत्री और यज्ञ को रुढियों और पाखण्ड से मुक्त कर जन-जन की उपासना का आधार तथा सद्बुद्धि एवं सतकर्म जागरण का माध्यम बनाया ।
- **तपस्वी** : जिन्होंने गायत्री की कठोरतम साधना कर २४-२४ लाख के २४ महापुरश्चरण २४ वर्षो में सम्पन्न किया । प्रकृति प्रकोप को शांत कर अनिष्टों को टाला, सृजन सम्भावनाओं को साकार किया ।
- **अखिल विश्व गायत्री परिवार के जनक** : जिन्हों ने अपने जीवनकाल में ही अपने साथ करोडों लोगों को आत्मियता के सूत्र में बाँधकर विश्व व्यापी 'युग निर्माण परिवार' - 'गायत्री परिवार' का गठन किया ।
- **समाज सुधारक** : जिन्हों ने नारी जागरण, व्यसन मुक्ति, आदर्श विवाह, जाति-पाँति प्रथा तथा परंपरागत रुढियों की समाप्ति हेतु अद्भूत प्रयास किए एवं एक आदर्श स्वरुप समाज में प्रस्तुत किया ।
- **ऋषि परम्परा के उद्धारक** : जिन्हों ने इस युग में महान ऋषियों की महान परंपराओं की पुनर्स्थापना की । लुप्तप्राय संस्कार परंपरा को पुनर्जीवित कर जन-जन को अवगत कराया ।
- **अवतारी चेतना** : जिन्होंने "धरती पर स्वर्ग के अवतरण और मनुष्य में देवत्व के जागरण" की अवतारी घोषणा को अपना जीवन लक्ष्य बनाया और चेतना का ऐसा प्रवाह चलाया कि करोंडों व्यक्ति उस ओर चल पड़े ।

गायत्री परिवार जीवन जीने कि कला के, संस्कृति के आदर्श सिद्धांतों के आधार पर परिवार,समाज,राष्ट्र युग निर्माण करने वाले व्यक्तियों का संघ है। **वसुधैवकुटुम्बकम्** की मान्यता के आदर्श का अनुकरण करते हुये हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा का विस्तार करने वाला समूह है गायत्री परिवार। एक संत, सुधारक, लेखक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और दूरदर्शी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित यह मिशन युग के परिवर्तन के लिए एक जन आंदोलन के रूप में उभरा है।

Free Download Complete Work Of Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya, Founder of All World Gayatri Pariwar